पूर्वाञ्चल खेती

दीक्षान्त समारोह विशेषांक

वर्ष : 34 सितम्बर 2024 अंक : 09

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)

पूर्वाञ्चल खेती

दीक्षान्त समारोह विशेषांक

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या 224 229 (उ.प्र.)

पूर्वाञ्चल खेती

दीक्षान्त समारोह विशेषांक

वर्ष 34 | सितम्बर 2024 | अंक 09

संरक्षक

डॉ. बिजेन्द्र सिंह

कुलपति

प्रधान सम्पादक

डॉ. आर. आर. सिंह

अपर निदेशक प्रसार

तकनीकी सम्पादक

डॉ. के.एम. सिंह

वरिष्ठ प्रसार अधिकारी/सह प्राध्यापक

डॉ. अनिल कुमार

सहायक प्राध्यापक, प्रक्षेत्र प्रबन्ध

सम्पादक मण्डल

डॉ. वी. पी. चौधरी

सहायक प्राध्यापक, पादप रोग

डॉ. पंकज कुमार

सहायक प्राध्यापक, कीट विज्ञान

सम्पादक

उमेश पाठक

मोबाइल नं. 9415720306

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखक के निजी हैं। प्रकाशक/सम्पादक इसके लिए उत्तरदायी नहीं है

विषय सूची

सरसों की उन्नत खेती — 01
संजीतं कुमार, आर0 आर0 सिंह एवं सोमेन्द्र नाथ

रबी की तिलहनी फसलों में खरपतवार प्रबन्धन — 03
एस. के. तोमर एवं मनोज कुमार

फसल अवशेष प्रबंधन के माध्यम से फसल उत्पादन में वृद्धि और जलवायु परिवर्तन — 06
वरून कुमार, आर0के0 सिंह एवं विनोद सिंह

स्वस्थ रहने के लिए कंकोड़ा की वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी — 10
अंकिता गौतम एवं रवि प्रकाश मौर्य

बैंगन की फसल में लगने वाले कीट–रोग एवं उनका नियंत्रण — 11
हिमांशु शेखर सिंह एवं वी.पी. सिंह

सब्जियों के कीट पहचान व नियंत्रण — 14
स्वप्निल सिंह, प्रीति सिंह एवं अवधेश कुमार

फलों की फसलों में बैगिंग — 17
प्रभात कुमार, संजय पाठक एवं अवधेश कुमार

श्वेत बटन मशरूम उत्पादन — 19
लाल पंकज कूमार सिंह, आर0 के0 आनन्द एवं ओम प्रकाश सिंह

फसलों के साथ मिश्रित हरा चारा उत्पादन तकनीकी — 22
ए. के. सिंह, नरेन्द्र प्रताप एवं आर.सी. वर्मा

जैविक खेती : सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम — 24
रोबिन कुमार और देव नारायण यादव

माताएँ कैसे करें शिशु की देखभाल — 27
रेनू सिंह, रतन कुमार आनन्द एवं संजय सिंह

बकरी पालन व्यवसाय — 29
एल. सी. वर्मा एवं राना पीयूष कुमार सिंह

बेरोजगार युवकों के लिये मुर्गी पालन लाभकारी व्यवसाय — 31
ए. के. सिंह, आर. सी. वर्मा एवं नरेन्द्र प्रताप

सितम्बर माह में किसान भाई क्या करें? — 33

प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के — 34

प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या

विश्वविद्यालय के कार्य क्षेत्र में स्थापित विभिन्न कृषि विज्ञान/ज्ञान केन्द्र एवं अनुसंधान केन्द्र

क्र.सं.	कृषि विज्ञान केन्द्र	वरिष्ठ वैज्ञानिक/अध्यक्ष/ प्रभारी अधिकारी	दूरभाष कार्यालय	मोबाइल
1.	वाराणसी	डॉ. नवीन सिंह	05542–248019	9451891735
2.	बस्ती	डॉ. एस.एन. सिंह	05498–258201	9450547719
3	बलिया	डॉ. संजीत कुमार	–	9837839411
4.	अयोध्या	डॉ. विनायक शाही	05278–254522	8755011086
5.	मऊ	डॉ. वी.के. सिंह	0547–2536240	8005362591
6.	चंदौली	डॉ. नरेन्द्र रघुवंशी	0541–2260595	9415687643
7.	बहराइच	डॉ. शैलेन्द्र सिंह	05252–236650	9411195409
8.	गोरखपुर	डॉ. सतीश कुमार तोमर	–	9415155518
9.	आज़मगढ़	डॉ. डी.के. सिंह	–	9456137020
10.	बाराबंकी	डॉ. अश्वनी कुमार	–	7985749643
11.	महाराजगंज	डॉ. डी. पी. सिंह	–	7839325836
12.	जौनपुर	डॉ. सुरेश कुमार कनौजिया	–	9984369526
13.	सिद्धार्थनगर	डॉ. ओ.पी. वर्मा	05541–241047	9452489954
14.	सोनभद्र	डॉ. पी. के. सिंह	–	9415450175
15.	बलरामपुर	इं. ए.के. पाण्डे	–	9919485148
16.	अम्बेडकरनगर	डॉ. रामजीत	–	9918622745
17.	संतकबीरनगर	डॉ. अरविन्द सिंह	–	9415039117
18.	अमेठी	डॉ. रतन कुमार आनन्द	–	9838952621
19.	नानपारा–बहराइच	डॉ. शशिकान्त यादव	–	9415188020
20.	मनकापुर–गोण्डा	डॉ. एस. के. वर्मा	–	9450885913
21.	बरासिन–सुल्तानपुर	डॉ. वी.पी. सिंह	–	9839420165
22.	अमिहित–जौनपुर	डॉ. आर.के. सिंह	–	9452990600
23.	आँकुशपुर–गाजीपुर	डॉ. आर. सी. वर्मा	–	9411320383
24.	श्रावस्ती	डॉ. एस.पी. सिंह	–	9458362153
25.	लैदोरा–आजमगढ़	डॉ. एल.सी. वर्मा	–	7376163318

विश्वविद्यालय के कृषि ज्ञान केन्द्र

क्र.सं.	कृषि विज्ञान केन्द्र	प्रभारी अधिकारी/	मोबाइल	दूरभाष कार्यालय
1.	अमेठी	डॉ. आर. आर. सिंह	9450938866	–
2.	गोण्डा	डॉ. आर. आर. सिंह	9450938866	–
3.	देवरिया	डॉ. आर. आर. सिंह	9450938866	–
4.	गाजीपुर	डॉ. आर. आर. सिंह	9450938866	–

विश्वविद्यालय के अनुसंधान केन्द्र

क्र.सं.	कृषि अनुसंधान केन्द्र	प्रभारी अधिकारी/	मोबाइल	दूरभाष कार्यालय
1.	मसौधा, अयोध्या	डॉ. डी. के. द्विवेदी	7706884188	05278–254153
2.	तिसुही, मिर्जापुर	डॉ. पी. के. सिंह	9415450175	05442–284263
3.	बसुली, महाराजगंज	डॉ. डी. पी. सिंह	9451430507	–
4.	घाघरा घाट, बहराइच	डॉ. महेन्द्र सिंह	9934318392	0525–235205
5.	बड़ा बाग, गाजीपुर	डॉ. आर.सी. वर्मा	9411320383	–
6.	बहराइच	डॉ. मनीष कुशवाह	7404673927	0548–223690

डॉ. बिजेन्द्र सिंह
कुलपति
Dr. Bijendra Singh
Vice-Chancellor

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या – 224 229 (उ.प्र.), भारत
Acharya Narendra Deva University of Agriculture & Technology
Kumarganj, Ayodhya - 224 229 (U.P.) India

संदेश

कृषक समाज के उत्तरोत्तर विकास एवम आर्थिक उन्नति के लिए आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवम प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय निरंतर कृषि शोध, शिक्षा एवम प्रसार का कार्य कर रहा है। विश्वविद्यालय के प्रयासों के परिणाम भी सामने हैं। उत्तर प्रदेश का पूर्वांचल अब किसानों के नवोन्मेष तथा सफल व लाभकारी खेती के बूते देश में अपनी अलग पहचान बना चुका है। यह सारी सफलता विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों के समसामयिक शोध, उससे विकसित तकनीकों एवम उनके व्यवस्थित प्रचार व प्रसार का परिणाम है। इस क्रम में किसानों तक अत्याधुनिक ज्ञान पहुंचाने का काम विशेषरूप से प्रसार निदेशालय के कंधों पर है।

अपनी प्रसार गतिविधियों में प्रसार निदेशालय द्वारा कृषि साहित्यों का प्रकाशन भी शामिल है। प्रसार निदेशालय द्वारा प्रकाशित की जाने वाली मासिक पत्रिका पूर्वांचल खेती का सितंबर माह का अंक दीक्षांत विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। मैं इस अंक के सफल प्रकाशन हेतु अपनी शुभकामनाएं देता हूं।

(बिजेन्द्र सिंह)
कुलपति

Ph.: *(05270) 262161 (O)* **Telefax :** *262097 (O)* **Ph.:** *262842 (R)* **Telefax :** *262032 (R)* **Email :** *vcnduat2018@gmail.com*

डॉ. आर. आर. सिंह
अपर निदेशक प्रसार

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या-224 229 (उ.प्र.), भारत
टेलीफैक्स : 05270-262821
फैक्स : 05270-262821

सम्पादकीय

आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवम प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय अपने कर्मशील और यशाश्वी कुलपति डॉ बिजेंद्र सिंह जी के नेतृत्व में शिक्षा, शोध एवम प्रसार के क्षेत्र में लगातार नए आयाम गढ़ रहा है। इन्ही सफलताओं के क्रम में इस वर्ष विश्वविद्यालय को नेक मूल्यांकन में देश के पहले कृषि विश्वविद्यालय के रूप में A++ विश्वविद्यालय का दर्जा प्राप्त हुआ है। इस अभूतपूर्व सफलता के साथ ही विश्वविद्यालय अपनी प्रमुख गतिविधि 26वां दीक्षांत समारोह का आयोजन भी करने जा रहा है। इस अवसर को यादगार बनाने के लिए पूर्वाचल खेती का यह अंक दीक्षांत विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। मैं पत्रिका के सफल प्रकाशन तथा 26 वां दीक्षांत समारोह के सफल आयोजन के लिए अपनी शुभकामनाएं देता हूं।

(आर.आर. सिंह)

सरसों की उन्नत खेती

संजीत कुमार*, आर0 आर0 सिंह** एवं सोमेन्द्र नाथ*

सरसों रबी में उगाई जाने वाली प्रमुख तिलहन फसल है। इसकी खेती सिचिंत एवं संरक्षित नमी से बारानी क्षेत्रों में की जाती है। हमारे देश में सरसों की औसत उपज काफी कम है उन्नत तकनीकों के उपयोग द्वारा सरसों की औसतन पैदावार 30 से 60 प्रतिशत तक बढ़ाई जा सकती है।

खेत की तैयारीः

खेत की पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करके बाद पाटा लगाकर खेत को भुरभुरा बना लेना चाहिए। यदि खेत में नमी कम हो तो पलेवा करके तैयार करना चाहिए। ट्रैक्टर चालित रोटावेटर द्वारा एक ही बार में अच्छी तैयारी हो जाती है।

उन्नतिशील प्रजातियाँ–

1. सिंचित क्षेत्र के लिए प्रजातियाँ – . पूसा सरसों–30, आर एच –749, आर एच –725, नरेन्द्र अगेती राई–4, नरेन्द्र स्वर्णा–राई–8 (पीली), नरेन्द्र राई (एन.डी.आर.–8501). वरूणा (टी 59), बसंती (पीली), रोहिणी, माया, उर्वशी आदि।

2. असंचित क्षेत्र के लिए प्रजातियाँ– वैभव, वरूणा (टा. 59)

3. विलम्ब से बुवाई के लिए– आर्शीवाद, वरदान

लवणीय /क्षारीय भूमि हेतु– नरेन्द्र राई (एन.डी. आर.–8501), सी.एस.–52, सी.एस.–54 आदि।

बीज दर–सिंचित एवं असिंचित क्षेत्रों में 4–5 किग्रा. /हे. की दर से प्रयोग करना चाहिए।

बीज शोधन–बीज जनित रोगों से सुरक्षा हेतु 2.5 ग्राम थीरम प्रति किलो बीज दर से बीज को उपचारित करके बोये। मैटालेक्सिल 1.5 ग्राम प्रति किग्रा. बीज शोधन करने से सफेद गेरूई एवं तुलासिता रोग की प्रारम्भिक अवस्था में रोकथाम हो जाती है।

बुवाई का समय एवं विधि– सरसों बोने का उपयुक्त समय सितम्बर के अंतिम सप्ताह सें अक्टूबर प्रथम पखवारा हैं। बुवाई लाईनों में 45 सेन्टीमीटर की दूरी पर करना चाहिए। बुवाई के बाद बीज ढकने के लिए हल्का पाटा लगा देना चाहिए। असिंचित दशा में बुवाई का उपयुक्त समय सितम्बर द्वितीय पखवारा है। विलम्ब से बुवाई करने पर माहू का प्रकोप एवं अन्य कीटों एवं बीमारियों की सम्भावना अधिक रहती है।

उर्वरक की मात्रा–उर्वरको का प्रयोग मिट्टी परीक्षण की संस्तुतियों के आधार पर किया जायें, सिंचित क्षेत्रों में नत्रजन 120 किग्रा. फास्फोरस 60 किग्रा. एवं पोटाश 60 किग्रा. प्रति हे. की दर से प्रयोग करने से अच्छी उपज प्राप्त होती है। फास्फोरस का प्रयोग सिंगिल सुपर फास्फेट के रूप में अधिक लाभदायक होता है। क्योंकि इससे सल्फर की उपलब्धता भी हो जाती है। यदि सिंगल सुपर फास्फेट का प्रयोग न किया जाए तो गंधक की उपलब्धता को सुनिश्चित करने के लिए 40 किग्रा./हे. की दर से गंधक का प्रयोग करना चाहिए तथा असिंचित क्षेत्रों मे उपयुक्त उर्वरकों की आधी मात्रा बेसल ड्रेसिंग के रूप में प्रयोग की जाय। डीएपी का प्रयोग किया जाता है तो इसके साथ बुवाई के समय 200 किग्रा. जिप्सम प्रति हे0 की दर से प्रयोग फसल के लिए लाभदायक होता है।

खरपतवार नियंत्रण एवं विरलीकरण– बथुआ, सेन्जी, कृष्णनील, हिरनखुशी, चटरी–मटरी, अकरा–अकरी, जंगली गाजर, प्याजी, खरबथुआ, सत्यानाशी आदि प्रमुख खरपतवार है। खरपतवार रोकथाम करने के लिए पहली निराई–गुड़ाई बुवाई के 25–30 दिन बाद और दूसरी 35–40 दिन के बाद करनी चाहिए। रसायनिक खरपतवार नियंत्रण करने पर बुवाई से पूर्व फ्लूक्लोरोलिन 45 ई.सी. की 2.2 लीटर प्रति 800–1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हे. की दर से छिड़काव कर भलीभांति हैरो चलाकर मिट्टी में मिला देना चाहिए या पैन्डीमेथलीन 30 ई.सी. 3.3 लीटर प्रति हे. की दर से बुवाई के 24 घन्टे के अन्दर के अन्दर 800–1000 लीटर पानी में घोलकर समान रूप से छिड़काव करें।

*वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, ***विषय वस्तु विशेषज्ञ (शस्य विज्ञान), कृषि विज्ञान केन्द्र, सोहॉव, बलिया, **अपर निदेशक प्रसार, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय कुमारगंज, अयोध्या

सिंचाई—राई नमी की कमी के प्रति फूल आने के समय तथा दाना भरने की अवस्थाओं में विशेष संवेदनशील होती है। अतः अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए सिंचाई करें यदि उर्वरक का प्रयोग भारी मात्रा में (120 किलोग्राम नत्रजन, 60 किलोग्राम फास्फेट तथा किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेयर) किया गया हो तथा मिट्टी हल्की हो तो अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिए 2 सिंचाई, पहली बुवाई के 30—35 दिन बाद तथा दूसरी वर्षा न होने पर 55—65 दिन बाद करें।

फसल सुरक्षा—

(क) सरसों के प्रमुख कीट—

सरसों की फसल को कीटों एवं रोगों से काफी नुकसान पहुंचता है जिससे इसकी उपज में काफी कमी हो जाती है। यदि समय रहते इन रोगों एवं कीटों का नियंत्रण कर लिया जाये तो सरसों के उत्पादन में बढ़ोत्तरी की जा सकती है। चेंपा या माहू, आरामक्खी, चितकबरा कीट, लीफ माइनर, बिहार हेयरी केटरपिलर आदि सरसों के प्रमुख कीट हैं।

नियंत्रण के उपाय—

1. गर्मी में गहरी जुताई करनी चाहिए।

2. संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए।

3. आरा मक्खी की सूड़ियों को प्रातः काल इकट्ठा कर नष्ट कर देना चाहिए।

4. प्रारम्भिक अवस्था में झुण्ड में पायी जाने वाली बालदार सूड़ियॉ पत्तियॉ को तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

5. प्रारम्भिक अवस्था में माहू से प्रभावित फूलों, फलियों एवं शाखाओं को तोड़कर माहू सहित नष्ट कर देना चाहिए।

6. फसल पर माहूं या चेंपा कीट का हमला होने पर नीम तेल की 3 मिली लीटर मात्रा एक लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें.

7. इमिडाक्लोप्रिड (17.8 एस.एल प्रतिशत) की 1 मिली लीटर मात्रा को प्रति 3 लीटर पानी में मिलाकर फसल पर छिड़काव शाम के समय करना चाहिए। जरूरत होने पर दूसरा छिड़काव 10—12 दिन बाद करें।

(ख) — सरसों के प्रमुख रोग

1. अल्टरनेरिया झुलसा रोग — सरसों का यह रोग बहुत ही महत्वपूर्ण है और इस रोग के लगने से 15—71 प्रतिशत तक उत्पादन में कमी हो जाती है। इस रोग का मुख्य लक्षण पौधे के पूरे भाग में दिखाई देता है तथा सबसे पहले यह रोग पत्तियों पर दोनों तरफ गहरे या भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। जिसमें गोल—गोल झल्ला जैसा स्पष्ट नजर आते हैं जो कि आगे चलकर तने एवं फलियों पर भी फैल जाते हैं।

2. मृदुरोमिल आसिता रोग — सरसों का यह रोग मृदुरोमिल आसिता तथा इस रोग के लगने से 20—45 प्रतिशत तक उत्पादन में कमी हो जाती है। और यह रोग भी फफूंद के कारण लगता है। रोग का लक्षण सबसे पहले नयी पत्तियों के निचली सतह पर बैंगनी भूरे रंग के छोटे गोल धब्बे बनते हैं। जो कि आकार में बढ़ जाते हैं। पत्तियों की निचली सतह पर बैंगनी रंग की मृदुरोमिल आसिता दिखाई पड़ती है और ऊपरी सतह पर पीले धब्बे पड़ जाते हैं।

3. सफेद गेरुई रोग— सरसों का सफेद गेरुई रोग बहुत ही खतरनाक है तथा इस रोग के लगने से 23—55 प्रतिशत तक उत्पादन में कमी हो जाती है। तथा यह रोग पूरे संसार में पाया जाता है। और यह रोग भी फफूंद के कारण लगता है। इस रोग का लक्षण सबसे पहले पत्तियों की निचली सतह पर सफेद एवं पीले फफोले जैसे पड़ जाते हैं। और इस रोग के कारण पौधे का सही तरीके से बढ़वार नहीं हो पाती है। तथा फूल बदरंग हो जाते हैं।

रोग नियंत्रण के उपाय—

1. बीज उपचार

1. सफेद गेरूई एवं तुलासिता रोग के नियंत्रण हेतु मैटालैक्सिल 35 प्रतिशत डब्लू.एस की 2.0 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से बीजशोधन कर बुवाई करना चाहिए।

2. अल्टरनेरिया पत्ती धब्बा रोग के नियंत्रण हेतु थीरम 75 प्रतिशत डब्ल्यूपी की 2.5 ग्राम प्रति किग्रा.बीज की दर से बीजशोधन कर बुवाई करना चाहिए।

2. भूमि उपचार—

1. भूमि जनित एवं बीज जनित रोगों के नियंत्रण हेतु बायोपेस्टीसाइड (जैव कवकनाशी) ट्राइकोडर्मा बिरडी

(शेष पृष्ठ 09 पर)

रबी की तिलहनी फसलों में खरपतवार प्रबन्धन

एस. के. तोमर* एवं मनोज कुमार**

भारत में उगाई जाने वाली फसलों में तिलहनी फसलों का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। तिलहनी फसलें खाद्य तेल की प्रमुख स्रोत हैं। तिलहनी फसलों में प्रमुख रूप से सरसों, तोरिया, कुसुम एवं अलसी की खेती रबी मौसम में तथा सरूजमुखी की खेती खरीफ, रबी एवं जायद तीनों मौसम में की जाती है। बागानी फसलों में नारियल एवं तेलताड़ (आयलपाम) से भी खाने का तेल मिलता है। हमारे देश में तिलहनी फसलों की खेती करीब 2 करोड़ 60 लाख हैक्टेयर क्षेत्रफल में की जाती है। जिनसे लगभग 1 करोड़ 90 लाख टन तिलहन उत्पादन होता है। लेकिन प्रति हैक्टेयर औसत पैदावार (720 किग्रा.) अन्य देशों की तुलना में बहुत कम है। पोषण–विज्ञानियों के अनुसार हमारे संतुलित आहार में 30–35 ग्राम चिकनाई जरूरी है। लेकिन 40–45 प्रतिशत खाने का तेल 5 प्रतिशत खाते–पीते लोगों में ही खप जाता है। काफी समय से प्रति व्यक्ति खाने का तेल देश में 4 कि.ग्रा. प्रति वर्ष ही पैदा हुआ, जबकि होना चाहिए 22 कि.ग्रा. तिलहनी फसलों की पैदावार कम होने के अनेक कारण हैं, जिनमें प्रमुख हैं :–

1. तिलहनी फसलों की खेती मुख्यतः असिंचित क्षेत्रों में की जाती है, जहां पर नमी एवं पोषक तत्वों की कमी होती है।

2. किसानों में तिलहनी फसलों की खेती, उन्नत किस्मों एवं तकनीक की जानकारी का अभाव है, तथा

3. कीट व्याधियों, बीमारियों तथा खरपतवारों का उचित समय पर नियंत्रण न कर पाना, आदि।

प्रमुख खरपतवार . तिलहनी फसलों की खेती खरीफ एवं रबी दोनो मौसमों में की जाती है। रबी तिलहनी फसलों में उगने वाले खरपतवारों को मुख्यतः तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है।

खरपतवारों से हानियाँ खरीफ मौसम में उच्च तापमान एवं अधिक नमी के कारण रबी मौसम की अपेक्षा अधिक खरपतवार उगते हैं और समय पर यदि इनकी रोकथाम न की गई तो इनसे पौधों की बढ़वारकाफी कम हो सकती है। जिससे इनकी उपज पर भी बुरा असर पड़ सकता है। खरपतवार फसलों के लिए भूमि में निहित पोषक तत्वों एवं नमी का एक बड़ा हिस्सा शोषित कर लेते हैं तथा साथ ही साथ फसल को आवश्यक प्रकाश एवं स्थान से भी वंचित रखते हैं। इसके अतिरिक्त खरपतवार फसलों में लगने वाले रोगों के जीवाणुओं एवं कीट व्याधियों को भी आश्रय देते हैं। कुछ खरपतवारों के बीज फसल के बीज के साथ मिलकर उसकी गुणवत्ता को कम कर देते हैं। जैसे – सत्यानाशी खरपतवार के बीज सरसों के बीज के साथ मिलकर तेल की गुणवत्ता को कम कर देते हैं।

खरपतवारों की रोकथाम कब करें ? प्रायः देखा गया है कि कीड़े मकोड़े, रोग आदि लगने पर इनकी रोकथाम की ओर तुरन्त ध्यान दिया जाता है। लेकिन किसान खरपतवारों को तब तक बढ़ने देते हैं, जब तक कि वह हाथ से पकड़कर उखाड़ने योग्य न हो जाएं, लेकिन उस समय तक खरपतवार फसलों के साथ प्रतिस्पर्धा करके काफी नुकसान कर चुके होते हैं। फसल के पौधे अपनी प्रारंभिक अवस्था में खरपतवारों से मुकाबला नह कर पाते हैं। अतः फसलों को शुरू से ही खरपतवार रहित रखना आवश्यक हो जाता है यहां पर एक बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि फसल को न तो हमेशा खरपतवार मुक्त रखा जा सकता है, और नही ऐसा करना आर्थिक दृष्टि से लाभकारी है। अतः फसल खरपतवार प्रतिस्पर्धा की क्रांतिक अवस्था में

*वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष एवं **एस. एम. एस. कृषि प्रसार, कृषि विज्ञान केंद्र बेलीपार गोरखपुर

खरपतवार नियंत्रण के उपायों को अपनाकर फसलों को खरपतवार रहित रखा जाए तो फसल का उत्पादन अधिक प्रभावित नहीं होता। विभिन्न तिलहनी फसलों में खरपतवार प्रतिस्पर्धा के क्रान्तिक समय का विवरण सारणी–2 में दिया गया है।

खरपतवारों की रोकथाम कैसे करें ? तिलहनी फसलों में खरपतवारों की रोकथाम

निम्नलिखित विधियों से की जा सकती है :–

1. निवारक विधि

इस विधि में वे क्रियाएं शामिल हैं जिनके द्वारा खेतों में खरपतवारों के प्रवेश को रोका जा सकता है

जैसे – प्रमाणित बीजों का प्रयोग, अच्छी सड़ी गोबर या कम्पोस्ट की खाद का प्रयोग, सिंचाई की नालियों की सफाई, खेत की तैयारी और बुआई में प्रयोग किये जाने वाले यंत्रों का प्रयोग से पूर्व अच्छी तरह से सफाई आदि।

2. यांत्रिक विधि

खरपतवारों पर काबू पाने की यह एक सरल एवं प्रभावी विधि है। तिलहनी फसलों की प्रारंभिक अवस्था में बुआई के 15 से 45 दिन के बीच का समय

सारणी–1 : विभिन्न तिलहनी फसलों में उगने वाले प्रमुख खरपतवार

क्र.	खरपतवारों की श्रेणी	रबी मौसम के खरपतवार
1	चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार	प्याजी (एस्फोडिलस टेन्यूफोलियस) बथुआ (चिनोपोडियम एलबम) सेंजी (मेलीलोटस प्रजाति) कृष्णनील (एनागालिस अरवेनसिंस) हिरनखुरी (कानवोलवुलस आरवेनसिस) पोहली (कार्थेमस आक्सीकैन्था) सत्यानाशी (आर्जेमोन मैक्सीकाना) अंकरी (विसिया सटाइवा) जंगली मटर (लेथाइरस सेटाईवा)
2	सकरी पत्ती वाले खरपतवार	गेहू का मामा (फेलोरिस माइनर) जंगली जई (अवेना लुडाविसियाना) दूब घास (साइनोंडोन डेक्टीलोन)
3	मोथाकुल परिवार के खरपतवार	मोथा (साइपेरस रोटन्डस)

सारणी 2: विभिन्न तिलहनी फसलों में फसल खरपतवार प्रतिस्पर्धा का क्रांन्तिक समय एवंखरपतवारों द्वारा पैदावार में कमी

तिलहनी फसलें	खरपतवार प्रतिस्पर्धा का क्रान्तिक समय (बुवाई के बाद) दिन	उपज में कमी (प्रतिशत)
कुसुम	15–45	35–60
तिल	15–45	17–41
सरसों	15–40	15–30
अलसी	20–40	30–40
सूरजमुखी	30–45	33–50

खरपतवारों की प्रतियोगिता की दृष्टि से क्रांतिक समय है। अतः प्रारम्भिक अवस्था में ही तिलहनी फसलों को खरपतवारों से मुक्त रखना अधिक लाभदायक है। सामान्यतः दो बार निराई–गुणाई, पहली बुआई के 20–25 दिन बाद तथा दूसरी 40–45 दिन बाद करने से खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण किया जा सकता है।

3. रासायनिक विधि

तिलहनी फसलों में खरपतवारनाशी रासायनों का प्रयोग करके भी खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है। इससे प्रति हैक्टेयर लागत कम आती है तथा समय की भारी बचत होती है। लेकिन इन रसायनों का प्रयोग करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि इनका प्रयोग उचित मात्रा में उचित ढंग से तथा उपयुक्त समय पर हो अन्यथा लाभ के बजाय हानि की संभावना रहती है। विभिन्न तिलहनी फसलों में प्रयोग किये जाने वाले खरपतवारनाशी रसायनों का विस्तृत विवरण सारणी–3 में दिया गया है।

खरपतवारनाशी रसायनों के प्रयोग में सावधानियां

1. प्रत्येक खरपतवारनाशी रसायनों के डिब्बो पर लिखे निर्देशों तथा उसके साथ दिये गये पर्चे को ध्यानपूर्वक पढ़ें तथा दिये गये तरीकों का विधिवत पालन करें।
2. खरपतवारनाशी रसायन को उचित मात्रा में तथा उचित समय पर छिड़कना चाहिये।
3. बुवाई से पहले या बुवाई के तुरन्त बाद प्रयोग किये जाने वाले रसायनों को प्रयोग करते समय भूमि में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।
4. खरपतवारनाशी का छिड़काव पूरे खेत में समान रूप से होना चाहिये।
5. खरपतवारनाशी का छिड़काव शांत हवा तथा साफ मौसम में करना चाहिये।
6. प्रयोग करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि रसायन शरीर पर न पड़े। इसके लिये विशेष पोषाक, दस्ताने तथा चश्में इत्यादि का प्रयोग करना चाहिये।
7. छिड़काव कार्य समाप्त होने के बाद हाथ, मुंह साबुन से अच्छी तरह धो लेना चाहिये तथा अच्छा हो यदि स्नान भी कर लें।

सारणी 3 : विभिन्न तिलहनाी फसलों में प्रयोग किये जाने वाले खरपतवारनाशी रसायन

तिलहनी फसल	खरपतवार–नाशी रसायन	मात्रा (ग्राम	प्रयोग का समय	प्रयोग विधि
रबी मौसम की तिलहनी फसलें (सरसों, तोंरिया एवं अलसी)	एलाक्लोर (लासो)	125 किग्रा.	बुवाई के बाद परन्तु अंकुरण से पूर्व।	खरपतवारनाशी की आवश्यक मात्रा को 600 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टेयर की दर से समान रूप से छिड़काव करें।
	फ्लूक्लोरेलिन (बासालिन)	2 लीटर	बुवाई के पहले छिड़ककर भूमि में अच्छी तरह मिला दें।	
	पेन्डीमिथलिन (स्टाम्प)	3.30 लीटर	बुवाई के बाद 24 घण्टे के अन्दर	
	क्लोडिनाफाप (टोपिक)	400 ग्राम	बुवाई के बाद 25–30 दिन	
	क्यूजालोफाप (टरगासुपर)	750 मिली	बुवाई के बाद 25–30 दिन	

फसल अवशेष प्रबंधन के माध्यम से फसल उत्पादन में वृद्धि और जलवायु परिवर्तन

वरून कुमार*, आर0के0 सिंह** एवं विनोद सिंह***

भारत दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी कृषि आधारित अर्थव्यवस्था है। भारत प्रति वर्ष भर फसल की खेती के साथ, कृषि अपशिष्ट की एक बड़ी राशि उत्पन्न करता है। फसल के अवशेषों सहित, पर्याप्त प्रबंधन प्रथाओं के अभाव में लगभग 92 मीट्रिक टन फसल अपशिष्ट को भारत में हर साल जला दिया जाता है, अत्यधिक कण पदार्थ उत्सर्जन और वायु प्रदूषण के कारण फसल अवशेषों को जलाना एक बड़ी पर्यावरणीय समस्या बन गई है जिससे स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं भी पैदा हो रही हैं। विशेष रूप से 2015 के बाद दिल्ली और भारत के अन्य उत्तरी क्षेत्रों में जलते हुए फसल अवशेष की वजह से वायु प्रदूषण के स्तर की खतरनाक वृद्धि हो रही है। खाद, बायोचर उत्पादन और मशीनीकरण कुछ प्रभावी टिकाऊ तकनीक है जो फसल अवशेषों में मौजूद पोषक तत्वों को मिट्टी में बनाए रखते हुए समस्या को रोकने में मदद कर सकती हैं।

भारत सरकार ने इस समस्या को कम करने का प्रयास किया है,ऐसे स्थायी प्रबंधन तरीकों को बढ़ावा देने के लिए डिजाइन किए गए कई उपाय और अभियान के माध्यम से फसल अवशेषों को ऊर्जा के रूप में परिवर्तित करने के लिए समाधान निकाल लिया है। परंतु साल–दर–साल इन समाधानों को नजरअंदाज किया जाता रहा है। हालांकि, इन तकनीकों का प्रभावी कार्यान्वयन के साथ हमें अन्य सामाजिक आर्थिक पहलुओं पर विचार करने की आवश्यकता है जिन पर विचार नहीं किया गया था।

तकनीकी के साथ–साथ किसानों की शिक्षा और सशक्तिकरण सहित हितधारकों की भागीदारी और उत्पाद निर्माण भी काफी सहायता कर सकते हैं। फसल अवशेष को जलाना पर्यावरण, कृषि, अर्थव्यवस्था, सामाजिक पहलुओं जैसे कई क्षेत्रों को छूता है, इसलिये सरकारी प्रयास मुख्य रूप से कृषि और ऊर्जा के आसपास घूमती है।

फसल अवशेष जो कृषि क्षेत्र या बाग में फसल कटाई के बाद छोड़ दिए जाते हैं। डंठल, पत्ते, और बीज फली फसल के अवशेषों के कुछ सामान्य उदाहरण हैं। भारतीय नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय (एमएनआरई) के अनुसार, भारत प्रति वर्ष औसतन 500 मिलियन टन फसल अवशेषों को उत्पन्न करता है। वहीं रिपोर्ट बताती है कि इस फसल अवशेष का अधिकांश हिस्सा वास्तव में चारा ईधन के रूप में अन्य घरेलू और औद्योगिक उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जाता है। हालांकि, अभी भी 140 मिलियन टन का अवशेष है जिसमें से प्रत्येक वर्ष 92 मिलियन टन को जला दिया जाता है। फसल अवशेष उपयोग की प्रौद्योगिकियों के उन विकल्पों को चुना गया है जो ग्रामीण क्षेत्र में किसान के स्तर पर अभ्यास कर सकते हैं। इस तरह संग्रह और परिवहन की लागत में बचत, प्रौद्योगिकी के बारे में जागरूकता और इसके उपयोग को सुनिश्चित किया जाएगा। कृषि उद्योग से अपशिष्ट को विभिन्न कृषि आधारित अनुप्रयोगों और अन्य औद्योगिक प्रसंस्करण में उपयोग किया जा सकता है। हालांकि, संग्रह, प्रसंस्करण और परिवहन की लागत राजस्व की तुलना में बहुत अधिक हो सकते हैं। फसल अवशेषों कि अपनी जैविक संरचना के कारण समाज के लाभ के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

उत्तर प्रदेश राज्य (60 मीट्रिक टन) में फसल अवशेषों का उत्पादन सबसे अधिक है जिसके बाद अन्य राज्यों जैसे पंजाब (51 मीट्रिक टन) और महाराष्ट्र में (46 मीट्रिक टन) और प्रति वर्ष 500 मीट्रिक टन की कुल संख्या है जिसमें से92 मीट्रिक टन जला दिया जाता है। विभिन्न फसलों के अवशेषों में, चावल का 43

*विषय वस्तु विशेषज्ञ (कृषि अभियन्त्रण), **(शस्य विज्ञान), ***(उद्यान), कृषि विज्ञान केन्द्र अमिहित जौनपुर।।

प्रतिशत, इसके बाद गेहूं लगभग 21 प्रतिशत, गन्ना से 19 प्रतिशत और तिलहन की फसलों का लगभग 5 प्रतिशत समावेश है। अधिशेष अपशिष्ट का एक हिस्सा जला दिया जाता है, और अवशेष क्षेत्र में छोड़ दिया जाता है।

फसल के अवशेषों के 80 प्रतिशत दहन अप्रैल–मई और नवंबर–दिसंबर की फसल कटाई के दौरान हुआ है। इसके पीछे कारण मानव श्रम की कमी व फसल पैटर्न के लिए जिम्मेदार ठहराया गया है। उच्च आर्थिक रिटर्न सुनिश्चित करने के लिए कुछ किसान एक साल में तीन फसलों के एक चक्र का सहारा लेते हैं जो लगातार दो फसल खेती के बीच कटाई और बुवाई के बीच सीमित समय छोड़ देता है।

पर्यावरण पर फसल अवशेष जलने का प्रतिकूल प्रभाव

फसल के अवशेषों के जलने से कई पर्यावरणीय समस्याएं उत्पन्न होती है। फसल अवशेषों के दहन के मुख्य प्रतिकूल प्रभाव में ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन, ग्लोबल वार्मिंग, कण पदार्थ (पीएम) और धुंध के स्तर में वृद्धि हुई है जो कि स्वास्थ्य के खतरों का कारण है, कृषि भूमि की जैव विविधता की, और मिट्टी की उर्वरता में गिरावट हुई है। इसमें मूल रूप से कार्बन, नाइट्रोजन, और अन्य पोषक तत्वों का नुकसान है, जो अन्यथा मिट्टी में बनाए रखा होता। 98.4 मीट्रिक टन फसल अवशेषों के जलने के परिणामस्वरूप लगभग 8. 57 मीट्रिक टन सीओ 141.15 मीट्रिक टन सीएओ का उत्सर्जन हुआ है।

हवा में PM2.5 के अनुमेय स्तर के लिए WHO मानक 10 g/m^3 है, और भारत के अनुसार

राष्ट्रीय परिवेशी वायु गुणवत्ता मानक, PM2.5 के लिए अनुमेय स्तर 40 g/m^3 पर सेट किया गया है। गैसों और एरोसोल के उत्सर्जन के अलावा, जलने के कारण मिट्टी की उर्वरता की निरंतर गिरावट है। अवशेष जलने से गर्मी मिट्टी के तापमान को बढ़ाते हैं और बैक्टीरिया और कवक की आबादी को कम करते हैं। अवशेष जलाने से सबसॉइल का तापमान लगभग 33. 8–422 डिग्री सेल्सियस 10 मिमी गहराई तक बढ़ जाता है। बार–बार जलने से नाइट्रोजन कम हो जाती है और मिट्टी की कार्बन क्षमता और मिट्टी के लिए फायदेमंद माइक्रोफ्लोरा और जीव को मारता है। फसल जलने के साथ मिट्टी का कार्बन–नाइट्रोजन संतुलन पूरी तरह से खो दिया जाता है। विभिन्न फसलों के औसत फसल अवशेषों में लगभग होता है 80 प्रतिशत नाइट्रोजन (N), 25 प्रतिशत फॉस्फोरस (P), 50 प्रतिशत सल्फर (S) और 20 प्रतिशत पोटैशियम (K)। अगर फसल अवशेषों को मिट्टी में ही रखा जाता है, यह मिट्टी को नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, सल्फर और पोटैशियम के साथ भी समृद्ध कर सकता है।

खेत में अवशेष जलाने से हानियाँ

जब खेत में अवशेष जलाया जाता है तो उससे मिट्टी का तापमान बढ़ जाता है और कई लाभकारी सूक्ष्म जीव, लाभदायक कीट जैसे केंचुए आदि जल कर नष्ट हो जाते हैं।

फसल अवशेष जलाने पर वातावरण में कई हानिकारक गैस जैसे कार्बन मोनोऑक्साइड, कार्बन डाईऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है, इससे वातावरण प्रदूषित होता है।

मृदा में कई जरूरी पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश व सल्फर जैसे बेहद जरूरी पोषक तत्व जल कर नष्ट हो जाते है।

फसल अवशेष जलाने का दुष्प्रभाव मानव के स्वास्थ्य पर भी देखा गया है जैसे कि

- फसल अवशेष जलाने पर धुएं के कारण स्मोग जैसी स्थिति पैदा हो जाती है जिससे सड़क पर वाहनों के टकराने की दुर्घटनाएँ बढ़ जाती हैं।
- ग्रीन हाउस गैसों के अधिक मात्रा में उत्सर्जन से वैश्विक तपन बढ़ रही है।
- सल्फर डाईऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड के

कारण आँखों में जलन हो जाती है।

- फसल अवशेष के साथ–साथ खेत के किनारों के पेड़ों को भी आग से नुकसान पहुंचता है।
- चर्म रोग की शिकायत बढ़ना।

खेतों में फसल प्रबंधन से लाभ

किसी भी दृष्टिकोण से फसल अवशेषों को जलाना उचित नहीं है, बल्कि फसल प्रबंधन के बहुत सारे लाभ हैं, जैसे

1. मृदा के भौतिक गुणों में सुधार

फसल अवशेषों को मिलाने से मृदा की परत में कार्बोनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ने से मृदा की सतह की कठोरता कम होती है तथा जलधारण क्षमता एवं मृदा में वायु–संचरण में वृद्धि होती है।

2. मिट्टी की उर्वराशक्ति में सुधार

फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने से मृदा के रसायनिक गुण जैसे उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा, मृदा की विद्युत चालकता एवं मृदा पीएच में सुधार होता है।

3. कार्बनिक पदार्थ की उपलब्धता में वृद्धि

कार्बनिक पदार्थ ही एकमात्र ऐसा स्त्रोत है जिसके द्वारा मृदा में उपस्थित विभिन्न पोषक तत्व फसलों को उपलब्ध हो पाते हैं तथा कम्बाइन द्वारा कटाई किए गए प्रक्षेत्र उत्पादित अनाज की तुलना में ज्यादा अवशेष होते हैं। यह सड़कर मृदा कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि करते हैं।

4. पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि

अवशेषों में लगभग सभी आवश्यक पोषक तत्वों के साथ 0.45 प्रतिशत नाइट्रोजन की मात्रा पाई जातीहै, जो कि एक प्रमुख पोषक तत्त्व है।

5. उत्पादकता में वृद्धि

फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने पर आने वाली फसलों की उत्पादकता में भी काफी मात्रा में वृद्धि होती है। अतः मृदा स्वास्थ्य पर्यावरण एवं फसल उत्पादकता को देखते हुए फसल अवशेषों को जलाने की बजाए भूमि में मिला देने से काफी लाभ होता है।

कृषि मशीनों द्वारा फसल अवशेष प्रबंधन

पुरानी कृषि पद्धति के अनुसार धान की कटाई के बाद किसान फसल के अवशेष जलाकर खेतों की बार–बार जुताई करके गेहूँ की बिजाई करते हैं, जिस पर काफी खर्च आता है। इसे कम करने के लिए जागरूक किसान जीरो सीडड्रिल व हैप्पी सीडर के इस्तेमाल से धान की कटाई के बाद बिना जुताई, बुवाई कर सकते हैं, इससे किसानों का गेहूँ की बिजाई पर खर्च कम आएगा।

हैप्पी सीडर से बुवाई करने के लाभ

- पर्यावरण प्रदूषण जो कि काफी बड़ी समस्या बन कर हमारे जीवन को प्रभावित कर रहा है, हैप्पी सीडरमशीन इस समस्या से कुछ हद तक निजात दिलाने में सक्षम है।
- सजीवांश पदार्थ को बढ़ाने एवं मिट्टी के भौतिक और रासायनिक अवस्था में सुधार के लिए फसलों के अवशेष मिट्टी में मिलना अत्यंत लाभदायक है।
- दानों के पूर्ण विकास के लिए मृदा का तापमान दिसम्बर.जनवरी में गर्म और मार्च–अप्रैल में ठंडा होनाचाहिए, फसल अवशेष ऐसा करने में सहायक साबित होते हैं।

जीरो टिलेज सीड ड्रिल द्वारा बुवाई के लाभ

- खरपतवारों के प्रकोप को कम करने के लिए इस तकनीक से बुवाई करना लाभदायक है क्योकि जुताई न करने से खरपतवारों के बीज मृदा की गहराई में पड़े रहते हैं और उनका अंकुरण नहीं हो पाता है।
- पानी की बचत में भी यह तकनीक अहम भूमिका निभाती है, जैसे धान की आखिरी सिंचाई की नमी में भी गेहूँ की बुवाई की जा सकती है जिससे पानी की बचत होगी।

मृदा में पोषक तत्वों का ह्रास (मिलियन टन)

मृदा में अनुमानित पोषक तत्व संतुलन	वर्ष 2000	वर्ष 2020
(1) रासायनिक उर्वरकों का उपयोग	18 मिलियन टन	29 मिलियन टन
(2) फसल द्वारा पोषक तत्व अवशेष	28 मिलियन टन	37 मिलियन टन
(3) शेष	10 मिलियन टन	8 मिलियन टन
(4) कार्बोनिक पदार्थों से पोषक तत्वों की अनुमानित उपलब्धता	5 मिलियन टन	7 मिलियन टन

स्त्रोत टंडन, 2004

• प्रदूषण को कम करने में भी अहम् है क्योकि इस मशीन से गेहूँ की बुवाई करने पर धान के अवशेषों में आग नहीं लगानी पड़ती है।

चोपर या मल्वर मशीन के लाभ

फसल अवशेषों को काटकर उसके टुकड़े करना तथा अवशेषों को समान रूप से फैलाना इस मशीन द्वारा किया जाता है। भूमि की सतह पर फसल अवशेषों की सतह बनने से खरपतवारों का प्रकोप कम किया जा सकता है और मृदा की जलधारण क्षमता व पोषक तत्वों में वृद्धि की जा सकती है।

रिवर्सिबल मोल्ड बोर्ड प्लो के लाभ

इस मशीन का उपयोग करके अवशेषों को मृदा में 15 से 30 सेमी. गहराई में मिलाया जाता है। मृदा की जलधारण क्षमता को बढ़ाने के लिए यह उपयोगी है।

निष्कर्ष

जिस प्रकार हमें एक शुद्ध वातावरण प्राप्त हुआ है, हमारी जिम्मेदारी है कि आने वाली पीढी का जीवन भी स्वस्थ हो इसके लिए हमें कुछ जरूरी कदम उठाने की आवश्यकता है, जैसे कि फसल अवशेषों को जलाकर नष्ट ना करना। इससे न केवल पर्यावरण प्रदूषण से बचा जा सकता है, बल्कि मृदा की उपजाऊ शक्ति तथा फसल उत्पादन को भी बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार हम अपनी मृदा के जीवांश पदार्थ व उर्वरा शक्ति में वृद्धि करके जमीन को खेती योग्य सुरक्षित रख सकेंगे और उसकी उपजाऊ शक्ति को बरकरार रख सकेंगे।

(पृष्ठ 02 का शेष)

1 प्रतिशत डब्लू.पी. अथवा ट्राइकोडर्मा हारजिएनम 2 प्रतिशत डब्लू.पी. की 2.5 किग्रा0 प्रति हे. 60–75 किग्रा सड़ी हुए गोबर की खाद में मिलाकर हल्के पानी का छींटा देकर 8–10 दिन तक छाया में रखने के उपरान्त बुवाई के पूर्व आखिरी जुताई पर भूमि में मिला देने से राई/सरसों के बीज/भूमि जनित आदि रोगों के प्रबन्धन में सहायक होता है।

3. पर्णीय उपचार–

1. अल्टनेरिया पत्ती धब्बा, सफेद गरूई एवं तुलासिता रोग के नियंत्रण हेतु मैकोजेब 75 डब्लू.पी. की 2.0 किग्रा अथवा जिनेब 75 प्रतिशत डब्लू.पी. की 2.0 किग्रा. अथवा कापर आक्सीक्लोराइड 50 प्रतिशत डब्लू.पी. की 3.0 किग्रा0 मात्रा प्रति हे0 लगभग 600–750 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करना चाहिए।

कटाई– मंड़ाई–

जब 75 प्रतिशत फलियॉ सुनहरे रंग की जो जायें, फसल को काट कर सुखाकर व मंड़ाई करके बीज अलग करना चाहिए। देर करने से बीजों के झड़ने की आशंका रहती हे। बीज को खूब सुखाकर ही भण्डारण करना चाहिए।

पैदावार : वैज्ञानिक विधि से खेती करने पर सिंचितं दशा में पैदावार 20–25 कु0/हे0 है तथा असिंचितं दशा में 10–12 कु0 /हे0 उपज प्राप्त होती है।

स्वस्थ रहने के लिए कंकोड़ा की वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी

अंकिता गौतम* एवं रवि प्रकाश मौर्य**

कंटोला (मोमोर्डिक डियोइकी) एक लोकप्रिय पोष्टिक सब्जी है, जिसकी खेती पूरे भारत में प्राचीन समय से की जाती है। हमारे देश में इसे ककोरा, कंटोला, कर्कोटकी, पपोरा एवं खेक्सा के नाम से जाना जाता है। यह सब्जी गर्मियों में जैसे गर्म मौसम में अच्छी तरह से विकसित हो सकती है। आमतौर पर, लोग इस सब्जी के साथ करेला को भ्रमित करते है। कंटोला में करेले से सम्बन्धित विशेषता होती है, परन्तु इसका स्वाद उतना नहीं होता है। कोई भी इन्हें पहचान सकता है। भारतीय उपमहाद्वीप के अलावा अब कंटोला की खेती अनेक देशों में की जाती है। यह कद्दू वर्गीय कुल का पौधा, जो भूमिगत कन्द द्वारा प्रवर्धित किया जाता है। इसकी बेल धीरे–धीरे बढ़ती है तथा इसका जीवनकाल 3 से 4 महीने का होता है। कंटोला में छोटे पत्ते और छोटे पीले फूल होते हैं। इसमें छोटे गहरे हरे, गोल या अण्डाकार फल लगते हैं। कंटोला में नर व मादा पुश्प अलग–अलग बेल में लगते हैं। कंकोडा की व्यावसायिक खेती छत्तीसगढ़, ओडिशा, झारखण्ड, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक एवं पश्चिम बंगाल में की जाती है।

औषधीय महत्व :

कंटोला के काफी लाभ है। यह पचने में हल्का होता है तथा इसमें कैलोरी कम होती है। इसमें अनेक रसायनिक यौगिक होते हैं, जो मानव शरीर के लिए लाभदाय होते हैं।

कंटोला की 100 ग्राम मात्रा में उपस्थित पोषक तत्वः

कार्बोहाइड्रेट	–	4.2 ग्राम
प्रोटीन	–	3.1 ग्राम
वसा	–	1.0 ग्राम
खनिज तत्व	–	1.1 ग्राम
रेशा	–	3.0 ग्राम
कैल्शियम	–	33 मि.ग्रा.
लौह तत्व	–	4.6 मि.ग्रा.
फॉस्फोरस	–	42 मि.ग्रा.

- यह स्वादिष्ट होने के साथ ही मांस 50 गुना ज्यादा ताकत और प्रोटीन से युक्त है।
- कंकोड़ा में उपस्थित फाइटोकेमिकल्स तथा एंटीऑक्सीडेन्ट शरीर को अन्दर से साफ एवं स्वस्थ रखने में सहायक है।
- कंकोडा के सेवन से डायबिटीज के मरीजों का ब्लड ग्लूकोज लेवल कम होता है, क्योंकि ये प्लांट इंसुलिन से भरपूर है।
- हाई ब्लडप्रेशर और पेशाब सम्बन्धी बीमारियों के मामलों भी कंकोड़ा बहुत की कारगर दवा है।
- कंकोड़ा में बीटा कैरोटीन, ल्यूटिन एवं जैक्मैन्थिस जैसे एंटी ऑक्सीडेन्ट होते हैं। ये त्वचा के लिए सुरक्षात्मक कवच का काम करते हैं और रंगत निखारते हैं। कुछ ही पौधों में मिलने वाले फाइटोन्यूट्रिएट्स का भी कंकोड़ा एक बड़ा स्रोत है।

कंकोड़ा की खेती के लिए जलवायु व भूमिः

कंकोड़ा की फसल जायद अथवा खरीफ मौसम में लगाई जाती है। ग्रीष्मकालीन उपज के लिए मैदानी क्षेत्रों में जनवरी–फरवली में उगाई जाती है। कंकोड़ा की खेती के लिए नर्म एवं गर्म जलवायु में की जा सकती है। इसके लिए औसतन 1500–2500 मि.ली. बारिश की आवश्यकता होती है। इसके पौधों के लिए 20 से 30 डिग्री तापमान उपयुक्त रहता है, इसकी खेती सभी प्रकार भूमि में की जा सकती है। कंकोड़ा की खेती के लिए जैविक पदार्थो से युक्त रेतीली भूमि काफी उपयुक्त रहती है। इस बात का विशेष ध्यान जाय कि जल भराव वाली भूमि में इसकी खेती कभी नहीं करनी चाहिए। कंकोड़ा के लिए उपयुक्त भूमि का पी.एच. मान 6 से के बीज होना चाहिए।

कंकोड़ा की उन्नत किस्में:

- इंदिरा कंकोड़–1
- अम्बिका–12–1
- अम्बिका–12–2
- अम्बिका–12–3

भूमि की तैयारी

कंकोड़ा की खेती करने से पहले खेत की जुताई कर पुराने फसल अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए। इसके

(शेष पृष्ठ 21 पर)

*एम.एस.सी.(उद्यान), डा0 भीम राव अम्बेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, लखनऊ एवं **निदेशक, रवि सुमन कृषि एवं ग्रमीण विकास ट्रस्ट, देवरिय (उ.प्र.)

बैंगन की फसल में लगने वाले कीट-रोग एवं उनका नियंत्रण

हिमांशु शेखर सिंह एवं डा. वी.पी. सिंह

बैंगन सोलेनेसी कुल की एक महत्वपूर्ण सब्जी है। इसकी खेती हमारे देश में प्राचीनकाल से होती आ रही है। विश्व में चीन 54 प्रतिशत के बाद भारत सबसे अधिक पैदावार 27 प्रतिशत वाला देश है। हमारे देश में बैगन की खेती लगभग पूरे साल की जाती है। बैगन की अच्छी उपज हेतु गर्म जलवायु की आवश्यकता होती है तथा अत्यधिक पाला इसकी खेती के लिये बाधक है। बैगन का उपयोग सब्जी, पकौड़े, भरता एवं कलौजी के रुप में किया जाता है। इसके अतिरिक्त आयुर्वेदिक चिकित्सा में भी बैगन का महत्वपूर्ण स्थान है। सफेद बैगन मधुमेह के रोगी के लिये उत्तम माना जाता है।

प्रमुख कीट एवं उनका नियंत्रण–

1. एपीलेकना बीटल– यह कीट पौधशाला से ही पौधों को हानि पहुंचाना शुरु कर देता है। इस कीट के वयस्क लाल भूरे रंग के होते हैं जिनके शरीर पर कई काले धब्बे होते हैं जबकि शिशु पीले रंग के होते हैं। इस कीट के शिशु एवं प्रौढ़ दोनो ही हरी पत्तियों को खुरचकर खाते हैं जिससे पत्तियों की केवल शिरायें शेष बचती हैं। अतः पौधे अपना भोजन नहीं बना पाते जिससे उनका विकास नहीं हो पाता है।

नियंत्रण– आवश्यकतानुसार कीटनाशी डेल्टामेथ्रिन 100 (ई.सी.) 15 मिली. या प्रोफेनोफास + साइपरमेथ्रिन 30 मिली./टंकी की दर से पौध उगने के 15 दिन बाद तथा उसके 10 दिन बाद पुनः छिड़काव करें।

2. तना एवं फल बेधक– बैगन की फसल का यह प्रमुख कीट है। इस कीट की सूंड़ी चिकनी गुलाबी रंग की होती है जिसकी पीठ पर बैगनी रंग की धारियॉ होती हैं। प्रारम्भिक अवस्था में सूंड़ी ऊपरी नई शाखाओं में छिद्र करके प्रवेश कर जाती हैं जिसके कारण शाखा मुरझाकर नीचे की ओर झुक जाती है तथा सूख जाती है अतः पौधे की बढ़वार रुक जाती है। बाद की अवस्था में सूंड़ी कलियों एवं फलों पर आक्रमण करती है। सूंड़ी अन्दर ही अन्दर फलों में छिद्र करके अन्दर घुस जाती हैं तथा छिद्र को अपने विष्ठा के द्वारा बन्द कर देती है। सूंड़ी अन्दर ही अन्दर फलों का गूदा खाकर नुकसान पहुंचाती है जिसके कारण फल टेढे–मेढ़े हो जाते हैं तथा खाने योग्य नहीं रह पाते हैं। इस कीट का आक्रमण ग्रीष्मकालीन फसल की अपेक्षा वर्षाकालीन फसल में अधिक होता है।

नियंत्रण– कीटग्रस्ट फलों को तोड़कर जमीन में दबा देना चाहिये।

इस कीट के नियंत्रण हेतु आवश्यकतानुसार कीटनाशी जैसे– क्लोरेन्ट्रानीलीप्रोल 18.5 (एस.सी.) 6 मिली. या फ्लूबेन्डामाइड 39.35 (एस.सी.) 5 मिली./टंकी की दर से 2–3 छिड़काव करते हैं।

3. लीफ हापर– इस कीट के प्रौढ़ तथा शिशु दोनो ही पत्तियों की निचली सतह से रस चूसते हैं। ये कीट छोटे, पीले या हल्के हरे रंग के होते हैं जिनके पंखो पर काले धब्बे पाये जाते हैं। पत्तियों से रस चूसने के कारण पत्तियॉ किनारे से पीली पड़कर सिकुड़ जाती हैं तथा कुछ दिनों बाद भूरे रंग की होकर सूख जाती हैं। यह कीट बैगन की फसल में छोटी पत्ती रोग का वाहक भी है।

नियंत्रण– इस कीट के नियंत्रण हेतु आवश्यकतानुसार कीटनाशी जैसे– फ्लोनीकामिड 50 (डब्ल्यू.जी.) 8 ग्रा. या थायमेथोक्साम 25 (डब्ल्यू.जी.) 10 ग्रा./टंकी की दर से 10–12 दिन के अंतराल पर 2 छिड़काव करना चाहिये। एक ही दवा का दोबारा प्रयोग नहीं करना चाहिये।

4. एफिड– ये कीट अत्यन्त छोटे आकार के होते हैं।

कृषि विज्ञान केन्द्र, बरासिन, सुलतानपुर (उ.प्र.)

इस कीट के युवा एवं प्रौढ़ दोनो ही पौधों के विभिन्न भागों से रस चूसते हैं। प्रभावित पौधों की पत्तियों पर पीले या हल्के हरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। कुछ समय बाद पत्तियॉ सूख जाती हैं। ये कीट पौधों पर एक विशेष प्रकार का मधु स्राव करते हैं जिससे पौधे पर काली फंफूद उग आती है जिसके कारण पौधों में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया बाधित होती है अतः पौधे अपना भोजन नहीं बना पाते।

नियंत्रण– इस कीट के रोकथाम हेतु आवश्यकतानुसार कीटनाशी जैसे– फ्लोनीकामिड 50 (डब्ल्यू.जी.) 8 ग्रा. या थायमेथोक्साम 25 (डब्ल्यू.जी.) 10 ग्रा./टंकी की दर से 2 छिड़काव करना चाहिये।

प्रमुख रोग एवं उनका नियंत्रण–

1. पद विगलन– पौधशाला में लगने वाला यह एक प्रमुख रोग है। यह रोग भूमि जनित कवकों जैसे– पीथियम, राइजोक्टोनिया एवं फाइटोफ्थोरा के मिले–जुले संक्रमण से उत्पन्न होता है। सर्वाधिक संक्रमण पीथियम नामक कवक से होता है। यह रोग पौधों की दो अवस्थाओं में पाया जाता है। पहली अवस्था में बीज अंकुरण के पूर्व अर्थात बीज बुआई के तुरन्त बाद इसका आक्रमण शुरु होता है जिससे बीज पूरी तरह से सड़ जाता हैं तथा जमीन की सतह से बाहर नहीं निकल पाता। दूसरी अवस्था में बीज अंकुरण के बाद पौधे का वह हिस्सा जो जमीन की सतह से लगा रहता है उस हिस्से में कोमलए जलसिक्त जैसी संरचना बन जाती है तथा रोग के उग्र होने की दशा में पौधा जमीन की सतह से लुढ़ककर नष्ट हो जाता है।

नियंत्रण– जल निकास का उचित प्रबंध करें और बीज को बुआई से पूर्व कार्बेन्डाजिम + मैंकोजेब 75 (डब्ल्यू.एस.) 3 ग्रा./किग्रा. या ट्राइकोडर्मा विरडी 5 ग्रा./किग्रा. की दर से बीजोपचार करना चाहिये।

पौधशाला में रोग के लक्षण दिखाई देते ही कवकनाशी जैसे– फिनामिडोन + मैंकोजेब 60 (डब्ल्यू.जी.) 30 ग्रा. या फोसेटाइल–एल 80 (डब्ल्यू.पी.) 30 ग्रा./टंकी की दर से 10–12 दिन के अंतराल पर 2 छिड़काव करना चाहिये।

2. फोमोप्सिस झुलसा– यह रोग फोमोप्सिस वेक्सेन्स नामक कवक के द्वारा होता है। बैगन की फसल का यह एक भयंकर रोग है। यह बीज जनित रोग है। इस रोग के कारण पत्तियों पर बड़े आकार के गोल भूरे रंग के धब्बे बनते हैं जिनके बीच का भाग हल्का रहता है। कुछ दिनों बाद इन धब्बों के बीच वाले भाग में छोटे–छोटे काले रंग के उभरे हुये धब्बे दिखाई देते हैं। कुछ समय बाद पत्तियाँ पीली पड़कर सूख जाती हैं तथा जमीन पर गिर जाती हैं। रोगी फलों पर धूल के कणों के समान पीले–भूरे रंग के अण्डाकार धब्बे दिखाई पड़ते हैं तथा गूदे को सड़ा देते हैं। फल का गूदा सड़ जाने के कारण फल उस स्थान पर अन्दर की ओर धंसा हुआ दिखाई देता है।

नियंत्रण– बीज को बुआई से पूर्व कार्बेन्डाजिम + मैंकोजेब 75 (डब्ल्यू.एस.) 3 ग्रा./किग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करके बुआई करें।

रोग के लक्षण दिखाई देते ही आवश्यकतानुसार कवकनाशी जैसे– कैप्टान + हेक्साकोनाजोल 75 (डब्ल्यू.पी.) 30 ग्रा. या प्रोपिनेब 70 (डब्ल्यू.पी.) 45 ग्रा. /टंकी की दर से 2 छिड़काव करें।

3. सर्कोस्पोरा पत्ती धब्बा– इस रोग के लक्षण सबसे पहले नीचे की (पुरानी) पत्तियों पर दिखाई देते हैं जो बाद में धीरे–धीरे ऊपर की ओर बढ़ते जाते हैं। वातावरण में नमी एवं उच्च आर्द्रता इस रोग को फैलाने में सहायक है। पौधे में इस रोग का प्रकोप पत्ती, डंठल तथा तने पर होता है। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में पत्तियों पर छोटे–छोटे गोल अथवा अण्डाकार हरिमाहीन धब्बे बनते हैं जो बाद में कोणीय अथवा अनियमित आकार के हो जाते हैं। कुछ समय बाद इन धब्बों के बीच का रंग पीला–भूरा अथवा भूरा हो जाता है। गम्भीर रुप से ग्रसित पत्तियाँ सूखकर किनारों से

मुड़ जाती हैं तथा पौधों से टूटकर अलग हो जाती हैं। नियंत्रण– बीज को बुआई से पहले कार्बेन्डाजिम + मैंकोजेब 75 (डब्ल्यू.एस.) 3 ग्रा./किग्रा. की दर से उपचारित करें।

रोग के लक्षण दिखाई देते ही कवकनाशी– कैप्टान + हेक्साकोनाजोल 75 (डब्ल्यू.पी.) 30 ग्राम या पाइरेक्लोस्ट्रोबीन + मेटीराम 60 (डब्ल्यू.जी.) 45 ग्राम/टंकी की दर से दो छिड़काव करें।

4. अल्टरनेरिया पत्ती धब्बा– यह रोग आल्टरनेरिया सोलेनाई तथा आल्टरनेरिया मेलोन्जेना नामक दो फफूंदियों के द्वारा होता है। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में इस रोग के लक्षण पत्तियों पर छोटे–छोटे काले–भूरे रंग के धब्बों के रुप में दिखाई देते हैं। अनुकूल वातावरण मिलने पर ये धब्बे आपस में मिलकर बड़े आकार के हो जाते हैं। ये धब्बे चारो तरफ से पीले रेग के घेरे के द्वारा घिरे रहते हैं। कुछ समय पश्चात् पत्तियाँ मुरझाकर जमीन पर गिर जाती हैं अतः पौधा पत्ती रहित हो जाता है। इस रोग का प्रभाव फलों पर भी पड़ता है। रोगग्रस्त फल पीले पड़ जाते हैं तथा परिपक्व होने से पहले ही जमीन पर गिर जाते हैं।

नियंत्रण– रोग के लक्षण दिखाई देते ही आवश्यकतानुसार कवकनाशी जैसे– कैप्टान + हेक्साकोनाजोल 75 (डब्ल्यू.पी.) 30 ग्रा. या पाइरेक्लोस्ट्रोबीन + मेटीराम 60 (डब्ल्यू.जी.) 45 ग्राम/टंकी की दर से दो छिड़काव करें।

5. जीवाणु जनित उकठा रोग– यह रोग राल्सटोनिया सोलेनेसियेरम नामक मृदाजनित जीवाणु के द्वारा होता है। बैगन के अलावा सोलेनेसी कुल के अन्य पौधों पर भी इस रोग का आक्रमण होता है। इस रोग के आक्रमण से पूर्ण वयस्क पौधे अचानक मुरझाकर सूखने लगते हैं। इस रोग के कारण पौधों की पत्तियाँ हल्की पीली हो जाती हैं तथा नीचे की ओर लटककर मुरझा जाती हैं। कुछ दिन बाद संपूर्ण पौधा सूखकर नष्ट हो जाता है। पौधे में इस रोग का आक्रमण फूल आने से लेकर फल आने तक अधिक होता है। इस रोग की निश्चित पहचान हेतु यदि रोगग्रस्त पौधे की शाखा को काटकर पानी में डुबोया जाये तो शाखा से सफेद दुधिया जैसा पदार्थ निकलता हुआ दिखाई देता है जो इस रोग की निश्चित पहचान कराता है।

नियंत्रण– गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें तथा धान्य एवं तिलहनी फसलों के साथ फसल चक्र अपनायें।

बीज को बुआई से पहले स्यूडोमोनास फ्लोरिसेन्स 10 ग्रा./किग्रा. की दर से बीजोपचार करके बुआई करें। रोग के लक्षण दिखाई देते ही प्लांटोमाइसिन 8 ग्रा. + कापर आक्सीक्लोराइड 40 ग्रा./टंकी की दर से घोल बनाकर पौधों पर छिडकाव करें।

6. छोटी पत्ती रोग– बैगन की फसल का यह प्रमुख रोग है। यह एक माइकोप्लाज्मा जनित रोग है जिसका वाहक हरा फुदका है। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में पौधों की पत्तियाँ पतली, कोमल तथा हल्की पीली हो जाती हैं। पत्तियाँ आकार में छोटी और विकृत हो जाती हैं। रोगग्रस्त पौधे सामान्य से छोटे हो जाते हैं तथा उनमें स्वस्थ पौधे की अपेक्षा अधिक संख्या में शाखायें तथा पत्तियाँ निकलती हैं। ग्रसित पौधे झाड़ीनुमा दिखाई देते हैं तथा पौधों पर फूल एवं फल नहीं बनते हैं। फिर भी यदि कोई फल बन भी जाता है तो वह कठोर हो जाता है तथा उसका विकास नहीं हो पाता है।

नियंत्रण– रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिये तथा रोग के लक्षण दिखाई देते ही कीटनाशी जैसे– फ्लोनीकामिड 50 (डब्ल्यू.जी.) 8 ग्राण या थायमेथोक्साम 25 (डब्ल्यू.जी.) 10 ग्रा./टंकी की दर से 2 छिड़काव करना चाहिये।

सब्जियों के कीट पहचान व नियंत्रण

स्वप्निल सिंह*, प्रीति सिंह** एवं अवधेश कुमार***

विभिन्न कीट और घुन घर के बगीचों में उगने वाली सब्जियों को विकास के सभी चरणों में नुकसान पहुंचा सकते हैं। यह लेख कुछ अधिक महत्वपूर्ण कीटों और उन्हें नियंत्रित करने के तरीकों का विवरण प्रदान करता हैं–

एफिड्स– 1–3 मिमी के, मुलायम शरीर वाले कीट होते हैं जो हरे, भूरे या काले रंग के हो सकते हैं। बसंत और शरद ऋतु में सबसे अधिक देखे जाने वाले एफिड्स पंख वाले या पंखहीन हो सकते हैं और आमतौर पर धीमी गति से चलते हैं। एफिड्स टहनियों के सिरे पर झुंड बनाकर पौधे से रस चूसते हैं, जिससे पौधे की शक्ति कम हो जाती है। एफिड्स वायरस भी फैला सकते हैं जो उपज और गुणवत्ता को गंभीर रूप से कम कर सकते हैं।

कैटरपिलर– आमतौर पर पतंगों या तितलियों के लार्वा चरण होते हैं। वे आम तौर पर बाल रहित होते हैं, जिनका शरीर 10–50 मिमी लंबा बेलनाकार होता है और रंग में भिन्न होते हैं। कैटरपिलर पत्तियों, तनों, फूलों, फलों और जड़ों पर हमला कर सकते हैं।

कटवर्म– कटवर्म दिन में मिट्टी में छिपे रहते हैं और रात में पौधों पर हमला करते हैं। वे युवा पौधों के तने को आधार से नुकसान पहुंचाते हैं, जिससे पौधा गिर जाता है।

थ्रिप्स– थ्रिप्स 1–2 मिमी लंबे टारपीडो के आकार के कीट होते हैं जो पीले, हरे, भूरे या काले रंग के हो सकते हैं। थ्रिप्स पत्तियों, फलों और फूलों का रस चूसते हैं और इस भोजन के परिणामस्वरूप पौधों पर सफेद धारियाँ पड़ जाती हैं।

सफेद मक्खियाँ– सफेद मक्खियाँ छोटे, 1.5–2.0 मिमी, रस चूसने वाले कीट हैं जो खुले में और ग्रीनहाउस में उगाई गई सब्जियों को नुकसान पहुंचा सकते हैं।

घोंघे और स्लग – ये मोलस्क अधिकांश फसलों पर हमला कर सकते हैं और पत्तियों में छेद कर सकते हैं और पौधों को मार सकते हैं। वे रात में सबसे अधिक सक्रिय होते हैं, खासकर नम मौसम में। अप्रैल और मई में नियंत्रण विशेष रूप से महत्वपूर्ण है जब वयस्क अंडे देते हैं।

सब्जियों के कुछ सामान्य कीट और उनके लक्षण यहाँ दिए गए हैं:

1. आलू का बीटल

पत्तियों पर छोटे छेद और खाने के निशान।

पत्तियों के निचले हिस्से में अंडे या लार्वा।

2. टमाटर का हॉर्नवॉर्म :

पत्तियों और तनों पर बड़े छेद।

पत्तियों के निचले हिस्से में हरे या भूरे रंग के लार्वा।

3. शिमला मिर्च का एफिड:

पत्तियों के निचले हिस्से में छोटे सफेद या हरे रंग के कीट।

पत्तियों पर चिपचिपा द्रव्य या हनी।

4. बंदगोभी का कीट:

पत्तियों पर छोटे छेद और खाने के निशान।

पत्तियों के निचले हिस्से में हरे या पीले रंग के लार्वा।

**असिस्टेंट प्रोफेसर, संसाधन प्रबंधन एवं उपभोक्ता विज्ञान विभाग, सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय, ***फल विज्ञान विभाग, उद्यान एवं वानिकी महाविद्यालय, *शोधछात्र, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज अयोध्या, उत्तर प्रदेश, 224229

5. मक्का का भुंगाः

तनों पर छोटे छेद और खाने के निशान।

तनों के अंदर हरे या भूरे रंग के लार्वा।

6. प्याज का थ्रिप्स :

पत्तियों पर छोटे चाकू जैसे निशान।

पत्तियों के निचले हिस्से में छोटे भूरे या पीले रंग के कीट।

यह सिर्फ कुछ उदाहरण हैं, और कई अन्य कीट हैं जो सब्जियों को प्रभावित कर सकते हैं। कीटों की पहचान और नियंत्रण के लिए स्थानीय कृषि विशेषज्ञों या कीट विज्ञानियों से परामर्श लेना उचित है।

सब्जी उत्पादन में समन्वित कीट प्रबंधन—एकीकृत नाशीजीव प्रबंधन के तरीकों की सफलता मुख्यतया हानिकारक कीट एवं मित्र कीटों की निगरानी के आधार पर कीट प्रबंधन के विभिन्न घटकों के एकीकरण कर सही निर्णय को लागू करने के ऊपर निर्भर है।

फसल चक्रअपनाकर कीट नियंत्रण— किसी भी खेत में सब्जियों को लगाते समय उचित फसल—चक्र अपनाना चाहिए जिससे एक ही कुल की सब्जी को पुनः नहीं लगाना चाहिए। इस विधि से निरन्तर जीवन चक्र अपेक्षाकृत संख्या एवं क्षति स्तर कम किया जा सकता है।

सस्य क्रियाओं द्वारा कीट प्रबंधन— कीट प्रबंधन में इस घटक के ऊपर कोई अतिरिक्त खर्च नहीं होता है, साथ ही यह पर्यावरण को सुरक्षित व अधिक टिकाऊ बनाता है। सस्य क्रियाओं का चयन ऐसा होना चाहिए जिससे नाशीकीटों के ऊपर एकीकृत एवं मित्र कीटों के ऊपर अनुकूल प्रभाव पड़े। इसके अन्तर्गत उचित किस्मों का चयन, बुवाई एवं रोपाई के समय में परिवर्तन, कीट—प्रपंच, फसल चक्र एवं अंतः फसलों का सही चुनाव आदि शामिल है।

अवरोधी एवं सहनशील किस्मों का उपयोग— किसी क्षेत्र के नाशीकीट एवं मित्र कीटों की विविधता एवं सघनता के आधार पर अवरोधी या सहनशील किस्मों का चुनाव समन्वित कीट प्रबंधन की महत्वपूर्ण कड़ी है। इस प्रकार चयनित किस्मों में अपेक्षाकृत कीटों का प्रकोप कम होता है तथा रासायनिक दवाओं के उपयोग में भी कमी आती है। यह विधि सबसे सरल, सस्ती व दुष्प्रभाव रहित है।

ग्रीष्मकालीन जुताई— गर्मी के मौसम में गहरी जुताई करके सुषुप्ता अवस्था में पड़े कीड़ों को नष्ट करना एक प्रभावी नियंत्रण विधि है।

सब्ज़ियों के कीटों से बचाव के लिए कुछ उपाय यह हैं:

1. जैविक नियंत्रणः जैविक नियंत्रण में कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं का उपयोग किया जाता है, जैसे कि परजीवी मक्खियाँ और मिट्टी के कीड़े।

2. रासायनिक नियंत्रणः रासायनिक नियंत्रण में कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है, लेकिन इसका उपयोग सावधानी से करना चाहिए ताकि पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव न हो।

3. सांस्कृतिक नियंत्रणः सांस्कृतिक नियंत्रण में खेती की तकनीकों का उपयोग किया जाता है, जैसे कि फसल चक्र, स्वच्छता, और जल प्रबंधन।

4. जालः जाल का उपयोग कीटों को पकड़ने के लिए किया जा सकता है, जैसे कि एफिड और थ्रिप्स।

5. प्राकृतिक दुश्मनः प्राकृतिक दुश्मनों का उपयोग कीटों को नियंत्रित करने के लिए किया जा सकता है, जैसे कि चिड़ियाँ और मेंढक।

6. फसल प्रतिरोधः फसल प्रतिरोध में कीटों के प्रति प्रतिरोधी फसलों का चयन किया जाता है।

7. स्वच्छता: स्वच्छता में खेतों को साफ रखना और कीटों के लिए अनुकूल वातावरण को हटाना शामिल है।

इन उपायों का उपयोग करके सब्ज़ियों के कीटों से बचाव किया जा सकता है और फसलों की वृद्धि और उत्पादन में सुधार किया जा सकता है।

सब्जी में जैविक विधि से कीट नियंत्रण– जैविक विधि से कीट नियंत्रण– समन्वित कीट प्रबंधन में जैविक नियंत्रण एक प्रमुख घटक है। किसी भी परिस्थिति में मित्र कीट एवं अन्य सूक्ष्म जीव मुख्यतया हानिकारक कीटों की संख्या को प्राकृतिक रूप से सीमित रखने में सहायता करते हैं। जैविक नियंत्रण से इन्हीं कारकों का प्रभावी ढंग से समन्वित कीट प्रबंधन में प्रयोग होता है, तथा मित्र कीटों को सुरक्षित रखने का प्रयास किया जाता है। बहुत सारे परभक्षी व परजीवी कीट प्राकृतिक दशा में मित्र कीट के रूप में पाये जाते हैं, जो हानिकारक कीटों के विभिन्न अवस्थाओं को क्षति पहुंचाते हैं। एक हेक्टेयर टमाटर की फसल को फलछेदक कीट से रोकथाम के लिए 2,50,000 ट्राइकोग्रामा परजीवी कीट का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार क्राइसोपरला कारनिया नामक परभक्षी कीट को 50,000 प्रति हेक्टेयर की दर से दस दिन के अन्तराल पर तीन बार छोडने़ से सफेद मक्खी, हरा फुदका, माहू आदि से फसल को सुरक्षित रखा जा सकता है। कीटों के प्राकृतिक शत्रु को प्रयोगशाला में अधिक संख्या में उत्पादन कर, उसे सफलतापूर्वक, आवश्यकतानुसार फसलों पर छोड़कर विषैले रसायनों के उपयोग में कमी लायी जा सकती है।

सूक्ष्म जीव द्वारा फसलों की सुरक्षा– सूक्ष्म जीव कीटनाशियों के अन्तर्गत जीवाणु, कवक और विषाणु का प्रयोग करके हानिकारक कीटों में रोग उत्पन्न कर उनका नियंत्रण किया जा सकता है। यह रोग हानिकारक कीड़ों में महामारी की तरह फैलता है जिससे कीड़े मर जाते हैं। सूक्ष्म कीटनाशियों में बी.टी. का प्रयोग व्यवहारिक स्तर पर किया जा रहा है। जिसके प्रयोग से गोभी का हीरक पृष्ठ कीट, भिण्डी का तना एवं फल छेदक कीट, टमाटर का फल बेधक कीटों का नियंत्रण संभव हुआ है।

यांत्रिक विधि से कीटों का नियंत्रण– कुछ कीट जिनको आसानी से देख जा सके उन्हें पकड़कर मार देना चाहिए। हड्डा बीटल, तम्बाकू की सूड़ीं के अण्डे तथा तना व फल को भेदकर खाने वाली सूड़ीं (बैगन व भिण्डी के फल छेदक कीट) को बहुत आसानी से देखकर कीट की विभिन्न अवस्थाओं को नष्ट कर देने से इनसे होने वाली क्षति से बचा जा सकता है। कीट नियंत्रण की इस विधि में लागत कम आती है एवं यह विधि सुरक्षित भी है।

व्यवहारिक नियंत्रण– इस विधि के अन्तर्गत प्रौढ़ कीटों को फेरोमोन का प्रयोग कर भ्रमित किया जाता है। सब्जियों में मुख्य रूप से बैगन का तना व फल बेधक, तम्बाकू की सूंड़ी, टमाटर का फल बेधक एवं फल मक्खी को फेरोमोन द्वारा आकृष्ट कर नियंत्रण किया जा सकता है।

रसायनों का सुरक्षित एवं आवश्यक मात्रा का प्रयोग– रसायनों का अनियमित और अत्यधिक प्रयोग करने से कीटों में प्रतिरोधी क्षमता का विकास हो जाता है। साथ ही हानिकारक रासायनिक अवशेषों की वातावरण में वृद्धि होती है। समन्वित कीट प्रबंधन में यदि दूसरे कारकों के साथ सही संतुलन बनाकर सुरक्षित रसायनों की सही मात्रा एवं उचित अंतराल पर छिड़काव किया जाय तो कीटनाशी रसायन बहुत प्रभावी होता है। विभिन्न कीटनाशियों का अलग–अलग प्रतीक्षाकाल होता है। इसलिए दवा छिड़कने के बाद प्रतिक्षाकाल के बाद फल की तुड़ाई करने से रासायनिक अवयवों के अवशेष नहीं रहते हैं।

फलों की फसलों में बैगिंग

प्रभात कुमार*, संजय पाठक** एवं अवधेश कुमार

फलों पर आवरण (बैगिंग) लगाना एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें चयनित फलों पर विभिन्न सामग्री जैसे–फोम नेट, एंटी–फॉग पॉलिथीन और न्यूज़पेपर के इस्तेमाल से फलों को ढकने का काम करते हैं, यह प्रक्रिया फलों को जैविक और अजैविक प्रभाव से बचाने के लिए करते है। फलों की फसलों में बैगिंग एक आधुनिक कृषि तकनीक है जिसमें फलों को पकने से पहले बाग में ही बैग या थैले में रख दिया जाता है। इससे फलों को कई तरह के नुकसान से बचाया जा सकता है, जैसे किः

- कीटों और तितलियों से बचाव
- फलों को धूप और बारिश से बचाव
- फलों को पकने में मदद करना
- फलों की गुणवत्ता में सुधार करना

बैगिंग के लिए विभिन्न प्रकार के बैग या थैले उपलब्ध हैं, जैसे कि पेपर बैग, पॉली बैग, और नेट बैग। किसान अपनी फसलों के अनुसार उपयुक्त बैग चुन सकते हैं।

फलों की फसलों में बैगिंग के और भी कई फायदे हैंः

- फलों को पकने के दौरान नुकसान से बचाव
- फलों की सुरक्षा और गुणवत्ता में सुधार
- फलों की दिखावट में सुधार
- फलों की शेल्फ लाइफ में वृद्धि
- फलों की मांग और बिक्री में वृद्धि

कुछ फल जिनमें बैगिंग की जाती है, वे हैंः

सेब, केले, अंगूर, नारंगी, आम, लीची, पपीता

बैगिंग के लिए कुछ सावधानियां भी बरतनी चाहिए, जैसे किः

- बैग का चयन सही तरीके से करना
- बैग को सही तरीके से लगाना
- बैग की नियमित जांच करना
- फलों की नियमित देखभाल करना

बैगिंग के लिए कुछ और सावधानियां भी बरतनी चाहिए, जैसे किः

- बैग को ज्यादा टाइट न करना
- बैग में हवा का संचार होने देना
- बैग को फलों के संपर्क में न आने देना
- बैग की साफ–सफाई का ध्यान रखना

बैगिंग के फायदे किसानों के लिए बहुत हैंः

- किसानों की आय में वृद्धि
- फलों की गुणवत्ता में सुधार
- फलों की मांग में वृद्धि
- किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार

कुछ देश जहां बैगिंग का उपयोग किया जाता हैः

चीन, जापान, कोरिया, भारत, अमेरिका, ब्राजील

बैगिंग के लिए कुछ और तकनीकें भी हैंः

- फलों को पैक करने की तकनीक
- फलों को स्टोर करने की तकनीक
- फलों को ट्रांसपोर्ट करने की तकनीक

बैगिंग फलों को "फल मक्खी" से होने वाले प्रकोप से बचाता है। फल मक्खी एक प्रकार की मक्खी है जो फलों में अंडे देती है और उसके लार्वा फलों को नुकसान पहुंचाते हैं। बैगिंग से फलों को इस प्रकार के नुकसान से बचाया जा सकता है।

बैगिंग के अलावा, फल मक्खी से बचाव के लिए और भी कुछ उपाय किए जा सकते हैंः

- फलों को नियमित रूप से जांच करना
- फलों को साफ और सूखा रखना
- फलों के आसपास के क्षेत्र को साफ रखना

*शोधछात्र, **प्रोफेसर, फल विज्ञान विभाग, उद्यान एवं वानिकी महाविद्यालय, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय

- फलों पर कीटनाशकों का उपयोग करना
- फलों को पकने से पहले तोड़ना

इन उपायों को अपनाकर, किसान फल मक्खी से होने वाले नुकसान को कम कर सकते हैं और अपनी फसलों की गुणवत्ता में सुधार कर सकते हैं।

चयनित फलों पर आवरण (बैगिंग) के लिए आवश्यक सामग्री–

फोम नेट (बॉटल नेक): शीर्ष भाग (बॉटल नेक) की चौड़ाई 40 मिली मीटर, निचले भाग की चौड़ाई 80 मिली मीटर, लंबाई 220 मिली मीटर– प्रति फल 1 फोम नेट

एंटी–फॉग पॉलिथीनः (मापः 13 इंच लंबाई 9 इंच चौड़ाई, 20 माइक्रोन) पॉलिथीन के निचले भाग पर 3–4 जगह पर 1 इंच का कट पानी निकासी के लिए लगाते हैं, प्रति फल 1 एंटी–फॉग पॉलिथीन।

न्यूज़पेपर–प्रति फल न्यूज़पेपर का 1 पृष्ठ

स्टेपलर, पिन और सूती धागा

फोम नेट के लाभ–

बाजार में कई प्रकार के फोम नेट उपलब्ध है परंतु वी एन आर बीही के लिए निर्धारित फोम नेट का ही प्रयोग करें।

फोम नेट फलों को भौतिक/बाहरी क्षति से बचाता है, जिससे फल स्वस्थ रहते हैं।

बैगिंग से लेकर बाजार में पहुंचने तक फल अनेक प्रक्रियाओं से होकर गुजरता है इन प्रक्रियाओं के दौरान होने वाली क्षति से बचाने में फोम नेट सहायक है।

बॉटल नेक आकार के फोम नेट को प्रयोग करने का लाभ यह है कि फल वृद्धि के दौरान यह फल से फिसल कर नीचे नहीं आता है।

फलों के बाजार पहुंचने के बाद फोम नेट फलों को सुरक्षित रखता है।

एंटी–फॉग पॉलिथीन के लाभ–

एंटी फॉग पॉलिथीन फलों को "फल मक्खी" से होने वाले प्रकोप से बचाता है।

एंटी फॉग पॉलिथीन में नमी को बाहर निकालने के लिए पॉलिथीन के निचले सिरे पर 3–4 स्थानों पर 1–1 इंच का कट करते हैं।

यह फल के द्वारा वाष्पोत्सर्जन से बनी हुई नमी को जमा नहीं होने देता, जिससे फल में किसी भी तरह का फफूंद संक्रमण नहीं होता है।

अन्य प्रकार का पॉलिथीन लगाना फल के लिए नुकसानदायक है।

इन्हें देख कर आपको समझ आ गया होगा कि बैगिंग क्या है और इसके क्या फायदे हैं। अब मैं आपको बताता हूं कि बैगिंग कैसे की जाती हैः

1. फलों को चुननाः सबसे पहले फालों को चुनना होता है। इसमे उन फलों को चुना जाता है जो पकने वाले हैं।

2. बैग का चयनः फलों के हिसाब से बैग का चयन किया जाता है। अलग–अलग फलों के लिए अलग–अलग बैग होते हैं।

3. बैग को लगानाः फलों पर बैग को लगाया जाता है। इसमे बैग को इतना टाइट नहीं किया जाता है कि फाल को नुकसान पहुंचाए।

4. बैग की जाँचः बैग की निर्धारित जाँच की जाती है। इसमे देखा जाता है कि बैग में कोई नुकसान तो नहीं हुआ है।

5. फल को काटनाः फल पकने के बाद बैग को खोल कर फल को काट लिया जाता है।

बैगिंग की तकनीक में सुधार करने से किसानों की आय में वृद्धि हो सकती है। इसलिये किसानो को बैगिंग की तकनीक का उपयोग करना चाहिए।

सावधानी–

अच्छी गुणवत्ता के स्टेपलर और पिन का उपयोग करना बैगिंग के समय आवश्यक है, जंग लगे हुए, पुराने तथा खराब स्टेपलर और पिन का प्रयोग ना करें, इसके प्रयोग से बैगिंग की गुणवत्ता प्रभावित होती है।

श्वेत बटन मशरूम उत्पादन

लाल पंकज कूमार सिंह*, आर0 के0 आनन्द** एवं ओम प्रकाश सिंह***

देश के मैदानी एवं पहाडी भागों में श्वेत बटन खुम्ब को शरद ऋतु में उगाया जाता है क्योंकि इस ऋतु में तापमान कम तथा हवा में नमी अधिक होती है। इस खुम्ब के उत्पादन के लिए कवक जाल फैलाव के दौरान 22–25°C तथा फलन के समय 14–18°C तापमान की आवश्यकता होती है तथा 80–85 प्रतिशत नमी की जरूरत पड़ती है। अन्य फसलों के विपरीत खुम्ब को कमरों या झोपड़ियों में उगाया जाता है।

आहार पौष्टिकता– विशिष्ट एवं प्रचुर मात्रा में प्रोटीन उपलब्ध होने के कारण शाकाहारी लोगो के लिए एक शामिस भोजन की तरह माना जाता है। इनमें सब्जियों गोभी, गाजर, आलू, टमाटर तथा सेब, केला, अंगूर की अपेक्षा अधिक प्रोटीन पायी ताजी है। इनमें अनेक अमीनो अम्ल भी पाये जाते है। इसके अतिरिक्त ये कार्बोहाइड्रेट, वसा तथा खनिज लवण का भी अच्छा स्रोत है। इनमें पर्याप्त मात्रा में कैल्शियम, फास्फोरस, लोहा, तांबा तथा पोटाश नामक खनिज पाये जाते हैं।

श्वेत बटन खुम्ब उगाने का तरीका

खाद (कम्पोस्ट) तैयार करना

खाद में प्रयुक्त सामग्रियाँ व उनकी मात्राएँ निम्नवत है–

. गेहूँ का भूसा 1 300 किलोग्राम

2. कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट (कैन) खाद 9 किग्रा

3. यूरिया 4 किलोग्राम

4. म्यूरेट ऑफ पोटाश खाद 3 किलोग्राम

5. सुपर फास्फेट खाद 3 किलोग्राम

6. चोकर (गेहूँ का) 15 किलोग्राम

7. जिप्सम 20 किलोग्राम

विधि

1. मिश्रण तैयार करना भूसे या भूसे तथा पुआल के मिश्रण को पक्के फर्श पर 1–3 दिन (24–72 घण्टों) तक रूक–रूक कर पानी का छिड़काव करके गीला किया जाता है। साथ ही गीले भूसे की ढेरी बनाने के 24–30 घंटे पहले जिप्सम को छोड़कर अन्य सभी सामग्री जैसे उर्वरकों व चोकर को एक साथ मिलाकर हल्का गीला कर लेते हैं तथा ऊपर से गीली बोरी से ढक देते हैं।

2. ढेर बनाना– गीले किये गये मिश्रण (भूसे व उर्वरक आदि) को मिलाकर करीब 5 फुट चौड़ा व 5 फुट ऊंचा ढेर बनाते है। ढेर की लम्बाई सामग्री की मात्रा पर निर्भर करती है लेकिन ऊचाई व चौडाई ऊपर लिखे माप से अधिक व कम नहीं होनी चाहिए। यह ढेर पांच दिन तक (ढेर बनाने के दिन के अतिरिक्त) ज्यों का त्यों बना रहता है। बाहरी परतों में नमी कम होने पर आवश्यकतानुसार पानी का छिडकाव किया जा सकता है। दो–तीन दिनो में इस ढेर का तापमान करीब 65–70°C हो जाता है जो कि एक अच्छा संकेत है।

3. पलटाई क्रम

क) पहली पलटाई (6वां दिन)

छठवें दिन ढेर को पहली पलटाई दी जाती है। पलटाई देते समय इस बात का विशेष ध्यान रखें कि ढेर के प्रत्येक हिस्से की उलट–पलट अच्छी तरह हो जाये ताकि प्रत्येक हिस्से को सड़ने–गलने के लिए पर्याप्त वायु व नमी प्राप्त हो जाये। ढेर बनाते समय यदि खाद में नमी कम हो तो आवश्यकतानुसार पानी का छिड़काव कर लेते हैं। नये ढेर का आकार व नाप पहले ढेर की भाँति ही होता है। आगे की पलटाईयाँ भी पहली पलटाई की भाँति की जाती है।

ख) दूसरी पलटाई (10 वां दिन)

ग) तीसरी पलटाई (13 वां दिन) इस पलटाई के समय जिप्सम भी मिलायें।

घ) चौथी पलटाई (16 वां दिन)

ड.) पांचवीं पलटाई (19 वां दिन)

च) छठवीं पलटाई (22 वां दिन)

छ) सातवीं पलटाई (25 वां दिन): इस पलटाई के समय नुवान या मैलाथियान (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव करें।

ज) आठवीं पलटाई (28 वां दिन)

*विषय वस्तु विशेषज्ञ (फसल सुरक्षा), **वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, ***प्रक्षेत्र प्रबन्धक कृषि विज्ञान केन्द्र, अमेठी

अट्ठाइसवें दिन खाद (कम्पोस्ट) में अमोनिया व नमी का परीक्षण किया जाता है। नमी का स्तर जानने के लिए खाद को मुट्ठी में दबाते हैं, यदि दबाने पर हथेली व उंगलियां गीली हो जाये परन्तु खाद से पानी निचुडकर न बहे, इस अवस्था में खाद मे नमी का स्तर उचित होता है तथा ऐसी दशा में कम्पोस्ट में 68–70 प्रतिशत नमी मौजूद होती है जो कि बिजाई के उपयुक्त है। अमोनिया का परीक्षण करने के लिए खाद को सूघा जाता है, सूंघने पर यदि अमोनिया की गंध (गौशाला में पशु मूत्र जैसी गंघ) आती है तो 3 दिन के अंतर से एक या दो पलटाई और देनी चाहिए। जब अमोनिया की गंध बिल्कुल समाप्त हो जाये और खाद से मीठी गंध आये तब खाद को फर्श पर फैला दिया जाता है और उसे 25 डिग्री सेल्सियस तापमान तक ठण्डा होने दे, तत्पश्चात बिजाई करें।

4. मशरूम बीज (स्पॉन) मशरूम स्पॉन बोल चाल की भाषा में इसका बीज है। वास्तव में स्पॉन मशरूम की वानस्पतिक स्थित है, जिसे गेहूँ, ज्वार, मक्का के उपचारित दानों पर पी०पी० बैग या शीशियों में तैयार किया जाता है।

5. बिजाई (स्पानिग) करना उपरोक्त विधि से तैयार खाद में बीज मिलाया जाता है। बिजाई करने से पहले बिजाई स्थान व बिजाई में प्रयुक्त किये जाने वाले बर्तनों को 2 प्रतिशत फार्मेलीन घोल में धोये व बिजाई का कार्य करने वाले व्यक्ति अपने हाथो को साबुन से धोयें, ताकि खाद में किसी प्रकार के सक्रमण से बचा जा सके। इसके पश्चात् 0.5 से 0.75 प्रतिशत की दर से बीज मिलायें यानि कि 100 कि. ग्रा. तैयार कम्पोस्ट के लिए 500–750 ग्राम बीज पर्याप्त है।

6. बीजित खाद का पॉलीथीन के थैलों में भरना व कमरों में रखना किसी हवादार कमरे में लोहे या बांस या अन्य प्रकार की मजबूत लकड़ी की सहायता से लगभग दो–दो फुट की दूरी पर अलमारी के समान एक के उपर एक मचान बना लें। मचान की चौड़ाई 4′ से अधिक ना रखें। यह कार्य शुरूआत में ही कर लेना चाहिए। खाद भरे थैले रखने से 2 दिन पहले इस कमरे के फर्श को 2 प्रतिशत फार्मेलीन घोल से धोयें तथा दीवारों व छत पर इस घोल का छिड़काव करें। इसके तुरंत बाद कमरे के दरवाजे तथा खिड़किया इस तरह बंद करें कि अंदर की हवा बाहर न आ सके। अब बिजाई करने के साथ–साथ 10–12 किलोग्राम बीजित खाद को पॉलीथीन के थैलों में भरते जायें तथा थैलों का मुंह कागज की थैली के समान पॉलीथीन मोड़कर बंद कर दें। यहाँ यह ध्यान रखें कि थैले में खाद 1 फुट से ज्यादा न हो। इसके पश्चात इन थैलों को कमरे में बने बास के टांड पर एक–दूसरे से सटाकर रख दें। खाद को बिजाई करने के पश्चात टांडों पर करीब 6″ मोटाई में ऐसे ही फैला कर भी रख सकते हैं। ऐसी दशा में टांडो के नीचे पॉलीथीन की शीट बिछा दें। खाद को फैलाने के बाद ऊपर से अखबार से ढक दिया जाता है और अखबार पर दिन में एक या दो बार पानी का छिड़काव किया जाता है। तत्पश्चात कमरे में 22–25 डिग्री सेल्सियस तापमान व 80–90 प्रतिशत नमी बनाये रखें।

7. केसिंग मिश्रण तैयार करना व केसिंग परत चढ़ाना बिजाई के लगभग 12–15 दिन बाद कवक जाल (बीज के तन्तु) खाद में फैल जाते है और खाद का रंग गहरे भूरे से बदलकर फफूंद जैसा सफेद हो जाता है। इस अवस्था में खाद को केसिंग मिश्रण की परत से ढकना पड़ता है तभी खुम्ब कलिकायें निकलना आरंभ होती है। केसिंग मिश्रण एक प्रकार की मिट्टी है जिसे दो साल पुरानी गोबर की खाद व दोमट मिट्टी (बराबर हिस्सों में) को मिलाकर तैयार किया जाता है। केसिंग मिश्रण को रोगाणु मुक्त करने के लिए 2 प्रतिशत फार्मेलीन के घोल से उपचारित करते है। फार्मेलीन नामक रसायन का 2 प्रतिशत घोल तैयार करने के लिए एक लीटर फार्मेलीन (40 प्रतिशत सक्रिय तत्व) को 20 लीटर पानी में घोला जाता है। इस घोल से केसिंग मिश्रण को गीला किया जाता है। तत्पश्चात इस मिश्रण को पॉलीथीन से चारों तरफ से ढक देते हैं और इस पॉलीथीन को केसिंग प्रक्रिया शुरू करने के 24 घण्टे पूर्व हटाते हैं। केसिंग तैयार करने का कार्य केसिंग प्रक्रिया शुरू करने के लगभग 15 दिन पहले समाप्त कर देना चाहिए यानि कि बिजाई के बाद कार्य शुरू कर देना चाहिए। कवक जाल फैले थैलों का मुंह खोलकर खाद की सतह को हल्का–हल्का दबाकर एक सरीखा कर लेते है तथा केसिंग मिश्रण की 3–4 से.मी. मोटी परत चढ़ा दी जाती है व थैले की अतिरिक्त

पॉलीथीन को नीचे की ओर मोड़ देते हैं तथा पहले की भाँति थैलों को कमरे में रख देते हैं। इस दौरान भी कमरे में 22–25 डिग्री सेल्सियस तापमान तथा 80–90 प्रतिशत नमी बनाये रखें। 8. केसिंग के उपरान्त रख रखाव केसिंग प्रक्रिया पूर्ण करने के पश्चात् प्रतिदिन थैलों में नमी का जायजा लेना चाहिये तथा आवश्यकतानुसार पानी का छिड़काव करना चाहिए। केसिंग करने के लगभग एक सप्ताह बाद जब कवक जाल केसिंग परत में फैल जाये तब कमरे के तापमान को 22–25 डिग्री सेल्सियस से घटाकर 16–18 डिग्री सेल्सियस पर ले आना चाहिए। इस तापमान पर छोटी–छोटी खुम्ब कलिकायें बनना शुरू हो जाती है, जो शीघ्र ही परिपक्व खुम्ब में बदल जाती है। इस चरण में नमी को करीब 85 प्रतिशत तक रखे। सुबह व शाम थैलों पर पानी का छिड़काव करना चाहिए। तापमान व नमी के

अतिरिक्त खुम्ब उत्पादन के लिये हवा का आदान–प्रदान उत्तम होना चाहिए। 9. खुम्बों की तुड़ाई, भण्डारण व उपज खुम्ब कलिकायें बनने के लगभग 2–4 दिन बाद विकसित होकर बडे–बडे खुम्बों में परिवर्तित हो जाती हैं। जब इन खुम्बों की टोपी का आकार 3–4 से.मी. हो तथा टोपी बंद हो (छत्रक न बना हो) तब इन्हें परिपक्व समझना चाहिये और मरोड़ कर तोड लेना चाहिए। लम्बे समय तक भण्डारण करने के लिये मशरूम को 18 प्रतिशत नमक के घोल में रखा जा सकता है। इस प्रकार करीब–करीब प्रतिदिन खुम्ब की पैदावार मिलती रहती है तथा 8–10 सप्ताह में पूरा उत्पादन मिल जाता है। एक क्विंटल कम्पोस्ट से औसतन 12–15 किलोग्राम खुम्ब की उपज प्राप्त होती है।

(पृष्ठ 10 का शेष)

बाद खेत में पानी लगा दें। पानी सूख जाने पर 2–3 बार जुताई करके मिट्टी को भुरभुरा बना लें। इसके बाद पाटी लगाकर खेत को समतल कर दें। समतल खेत में पौध रोपाई के लिए गड्ढे तैयार कर लिये जाय।

प्रवर्धन

कंकोड़ा का प्रवर्धन बीज, कन्द अथवा कटिंग द्वारा किया जाता है।

बीज

एक एकड़ क्षेत्रफल की बुवाई के लिए 1–2 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है। इसके बीज 5–6 महीने सुषुप्तावस्था में रहते हैं। नर एवं मादा पौधों का निर्धारण करना कठिन होने के कारण बीज द्वारा प्रवर्धन कम किया जाता है।

कन्द

स्वस्थ पौधा का कन्द, जो कि 120–150 ग्राम वजन का हो तथा कम से कम 2 कलिका उपस्थित हों, का चयन किया जाना चाहिए। कन्द को थायोयूरिया से उपचारित कर 3000–5000 कन्द प्रति हेक्टेयर 2 गुणा 1 मीटर दूरी पर लगाना चाहिए।

कर्टिंग

पुरानी बेल से गहरी हरी कर्टिंग, जिनमें 2–3 गांठे हों, काटकर पहले उन्हें बलुई मिट्टी में लगाना चाहिए। जड़ निकलने के बाद इसे खेत लगाना चाहिए।

कंकोड़ा की बुवाई का तरीका

कंकोड़ा की फसल से अच्छा उत्पादन प्राप्त करने के लिए खेत में पौधों की संख्या पर्याप्त होना आवश्यक है। इस फसल की बुवाई अच्छी प्रकार तैयार खेत में क्यारी बनाकर अथवा गड्ढों में की जाती है। गड्ढों की आपस में दूरी 2 ग 2 मीटर रखनी चाहिए तथा प्रत्येक गड्ढे में 2–3 बीज की बुवाई करते हैं और इस प्रकार 4 ग 4 मीटर के प्लाट में कुल 9 गड्ढे बनते हैं। जिसमें बीच वाले गड्ढे में नर पौधा रखते हैं तथा बाकी 8 गड्ढों में मादा पौधों को रोपना चाहिए। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि एक गड्ढे में एक ही पौधा रखा जाता है।

खाद एवं उर्वरक

कंकोड़ा का अच्छा उत्पादन प्राप्त करने के लिए खाद एवं उर्वरक की मात्रा का ध्यान भी रखना आवश्यक है। सामान्यतः खेत की अन्तिम जुताई के समय 200 से 250 क्विंटल प्रति हेक्टेयर अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद मिट्टी में मिला देना चाहिए।

उपज

अच्छी देखभाल करने पर कंकोड़ा की 650 प्रति बेल की उपज प्राप्त की जा सकती है। यह लगभग 5 टन प्रति एकड़ के बराबर है।

फसलों के साथ मिश्रित हरा चारा उत्पादन तकनीकी

ए. के. सिंह**, डा.नरेन्द्र प्रताप* एवं आर.सी. वर्मा**

पूर्वांचल में सिंचित खेती में पशुधन का बहुत महत्व है। यहाँ पर पशुधन से दुध मांस उत्पादन के द्वारा किसानों की आय में वृद्धि हुई है। यहाँ का मध्यमवर्गीय किसान दुग्ध उत्पादन के द्वारा अच्छी आय प्राप्त कर रहा है एवं लघु तथा सीमान्त किसान बकरी पालन के द्वारा अपनी आर्थिक आय बढ़ा रहा है। लेकिन इस क्षेत्र में पशुधन उत्पादकता पश्चिमी क्षेत्र की अपेक्षा काफी कम है। क्योंकि यहाँ के पशुओं के लिए उच्च कोटि के हरे चारें की काफी कमी है। यहाँ के ज्यादातर पशु गेहूँ के भूसे, ज्वार/बाजरा की कड़वी एवं धान के पुआल आदि पर निर्भर है तथा कुछ क्षेत्रो में पशु चराई पर निर्भर है। इस वजह से प्रति पशु उत्पादकता काफी कम है। पूर्वांचल में पशुधन व्यवसाय अधिक प्रभावी नही हो सका है। इसका एक कारण और है, कि इस क्षेत्र में अच्छी नस्ल के पशुओं का अभाव है। बढ़ती अबादी एवं सिमित कृषि क्षेत्र होने के कारण किसान चारा फसलों की अपेक्षा खाद्यान्न फसलों को अधिक महत्व देते है, जिससें हरे चारे का काफी अभाव रहता है। जिससे प्रति पशु उत्पादकता पश्चिमी क्षेत्र की अपेक्षा काफी कम है। कृषि के उन्नत विधियों के विकास के कारण खेती का क्षेत्रफल बढ़ा है, जिससे चारागाह (पशुओं के चरने का स्थान) कम होते जा रहे है। पशुओं को हरे चारे के रूप में चरने को नहीं मिल रहा है। इस क्षेत्र में सूखे चारे की 16 प्रतिशत, हरे चारे का 64 प्रतिशत एवं खली दाना की 80 प्रतिशत कमी है। पूर्वांचल में चारा उत्पादन का समाधान चारा उत्पादन बढ़ाने के लिए नयी विधियां अपनानी पड़ेंगी जैसेः– फसलोंत्पादन के साथ मिश्रित हरा चारा उत्पादन को बढाना पड़ेगा।

फसलों के साथ चारा उत्पादन– फसलोत्पादन पद्यति में फसलों की दो लाइनो के बीच में हरा चारा उत्पादन कर सकते है, जिससे बची हुई जमीन का समुचित उपयोग चारा उत्पादन के लिये किया जा सकता है। इस तरह की पद्धति में जो सहायक फसल बोई जाती है, उसकी मुख्य फसल के साथ कोई प्रतिस्पर्धा नहीं होती है, बल्कि उन्ही संसाधनो से एक ही समय में उत्तम किस्म का मिश्रित पौष्टिक हरा चारा मिल जाता है, क्योंकि मिश्रित हरा चारा उत्पादन पद्धति में दलहनी फसलों को मिश्रित रूप से उगाया जाता है। जिससे कुल चारे के पैदवार में वृद्धि हो जाती है तथा साथ ही दलहनी हरे चारे की वजह से खाद के प्रयोग में भी बचत होती है। इसके अतिरिक्त इस पद्यति से भूमि का समुचित उपयोग खर पतवार नियंत्रण तथा प्रतिकुल परिस्थितियों मे भी फसल उत्पादन सम्भव है। मिश्रित फसलोत्पादन पद्यति में उत्तम किस्म का हरा चारा प्राप्त होता है, क्योंकि दलहनी हरे चारे में प्रोटीन, कैल्सियम तथा फॉस्फोरस प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। अनेको अनुसंधान के द्वारा पाया गया है कि एक दलीय फसलो को दलहनी चारा फसलों के साथ बोने से चारे की गुणवता में सुधार किया जा सकता है।

गरमी के मौसम में मिश्रित हरा चारा उत्पादन– गर्मी के मौसम में जब पशुओं को दुग्ध उत्पादन बढ़ाने के लिए हरे चारे की आवश्यकता होती है तो ऐसे समय में बाजरा एवं ज्वार के साथ लोबिया एवं ग्वार को मिश्रित पद्यति से उगाकर पशुओं को उत्तम किस्म का पौष्टिक हरा चारा 250–300 कु0/हे0 प्राप्त किया जा सकता है, अगर इस पद्धति से बाजरा + लोबिया को बोया जाये तो 255 कु0/हे0 तक हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है। अगर बाजरा के साथ ग्वार की बुआई किया जाय तो इस पद्धति से 250 कु./हे. तक पौष्टिक हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि बाजरा के साथ ग्वाार की बुआई किया जाय तो इस पद्धति से भी 240 कु./हे. तक पौष्टिक हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है। ज्वार + लोबिया की बुआई किया जाय तो इस पद्धति से भी 320 कु./हे. तक हरा चारा उत्पादन किया जा सकता है। ज्वार + ग्वार के साथ भी 300 कु./हे. तक पौष्टिक हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है। जायद में गन्ने की बुआई यदि लाइन से करते है तो इनके बीच काफी जगह रहती है इनके बीच उर्द/मूग के साथ लोबिया या मक्का/ज्वार के साथ लोबिया भी बो सकते है इससे भी उच्च कोटि का हरा चारा उत्पादन किया जा

*वैज्ञानिक **वरिष्ठ वैज्ञानिक कृषि विज्ञान केन्द्र, आँकुशपुर, गाजीपुर

सकता है।

ओवर लैपिग क्रापिंग सिस्टम– इस पद्धति में उपयुक्त चारे की किस्मों को एक साथ उगाया जा सकता है जिससे वर्ष भर बड़े पशुपालको एंव सीमित संसाधन वाले छोटे किसानो को हरे चारे की आपूर्ति सुनिश्चित किया जा सके। इस पद्धति में फरवरी मार्च के महीने में एक–एक मीटर की दूरी पर नेपीयर, नंन्दी घास एंव गिन्नी घास की रोपाई कर देते है। इन घासों को रबी की फसल में दिये गये पोषक तत्वों एवं पानी के द्वारा आसानी से उगााया जा सकता है। बरसीम से अप्रैल तक हरा चारा मीलता है, इसके बाद बरसीम को हटा कर उसके स्थान पर लोबिया की बुआई कर देते है जिससे गर्मी में नेपियर के साथ लोबिया का भी उच्च कोटि का हरा चारा पशुओ को मिल सके इस पद्धति में लोबिया को अतिरिक्त, खाद पानी नही देना पड़ता है।

सघन चारा उत्पादन पद्धति– सघन चाराउत्पादन पद्धति में एक ही खेत में पुरे वर्ष हरा चारा उत्पादन किया जा सकता है लघु एंव सीमित संसाधन वाले छोटे किसानों को जिनके पास खेत कम हो उनके लिये यह चारा उत्पादन पद्धति अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे कम एरिया मे कृषकों को उत्तम किस्म का हरा चारा मिल जाता है। कुछ महत्वपूर्ण सघन चारा उत्पादन पद्धति में गर्मियों में ज्वार/ बाजरा/मक्का के साथ लोबिया/उर्द/मूंग आदि तथा बरसात में एम.पी. चरी + लोबिया + सोयाबीन आदि के साथ हरा चारा उत्पादन किया जा सकता है। सघन चारा उत्पादन पद्धति ऐसे क्षेत्रो मे अपनायी जाती है जहाँ सिचाई के साधनो का समुचित प्रबंध हों क्योंकि चारा फसलों की सिचाई की अधिक आवश्यकता होती है। सघन चारा उत्पादन पद्धतियो के अर्न्तगत किये गये अनुसंधान कार्यो से परिणाम मिला कि एम.पी. चरी + लोबिया + सोयाबीन तथा नेपियर +लोबिया पद्धति की उपज से 160 टन/हे. तक पौष्टिक हरा चारा प्राप्त हुआ। इसी प्रकार एम पी चरी + लोबिया + मक्का पद्धति से 220 टन/हे. तक हरा चारा प्राप्त हुआ।

बहुफसली पद्धति– बहुफसली पद्यति में 3–4 फसलों को एक वर्ष में एक ही भूमि में उगाया जाता है। इस फसलोत्पादन पद्यति का मुख्य उद्देश्य लघु एवं सिमान्त कृषको को कम क्षेत्रफल में उत्तम किस्म के पौष्टिक चारे का अधिकतम उत्पादन प्राप्त करना होता है। बहुफसली पद्यति फसल की कटाई एवं दूसरी फसल की बुआई के मध्य के समय में भी चारे की पूर्ति सुनिश्चित किया जा सकता है। बहुफसली पद्यतिया जैसे :– मक्का + लोबिया, एम पी चरी + लोबिया, ज्वार/बाजरा + लोबिया, इत्यादि को बहुफसली पद्यति के रुप में अपनाया जाता है। पूर्वांचल में सिंचित क्षेत्रो में दो फसली पद्यति गेहूँ – धान या गेहूँ – ज्वार/बाजरा/मक्का प्रचलित है। बरसात के पूर्व मध्य अप्रैल से जून (60.–70 दिन) गेहूँ काटने के बाद बरसात से पूर्व के समय में ज्वार/बाजरा/मक्का के साथ लोबिया उगाकर 300–350 कु0/हे0 हरा चारा प्राप्त किया जा सकता है।

लोबिया– भारत वर्ष में लोबिया एक महत्वपूर्ण दलहनी हरा चारा है इसे ज्वार, बाजरा, मक्का के साथ अन्तः फसल के रुप में बोया जा सकता है। इसमें प्रोटीन की मात्रा 15–20 प्रतिशत तक पायी जाती हैं। दुग्ध उत्तपादन के लिये बहुत महत्वपूर्ण है।

प्रमुख प्रजातिया– इसकी प्रमुख जातिया बुन्देल लोबिया 1, बुन्देल लोबिया 2, रसियन जाइंट, आदि प्रमुख है।

भूमि– लोबिया की फसल के लिये अच्छी जलनिकास वाली हल्की बलुई ढोमट अच्छी मानी जाती है।

बीजदर– अकेले फसल के रुप में 40–50 कि. ग्रा. /हे. की दर से बोना चाहिये यदि अन्तः फसल के रुप में बोना हो तो उस स्थिति में बीज की मात्रा 15–20 कि. ग्रा./हे. रखनी चाहिये। बीज सदैव कवकनाशी रसायनो वेविस्टीन तथा डायथेन जेड 78 से उपचारित कर के बोना चाहिये।

खाद एंव उर्वरक– 20–25 टन सडी गोबर की खाद खेत तैयारी के 15 दिन पूर्व मिट्टी में मिलाना चाहिये। उर्वरको में 25 कि.ग्रा./हे. नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है एंव साथ मे 60 कि.ग्रा./हे. फॉस्फोरस तथा 50 कि.ग्रा./हे. पोटास की आवश्यकता होती है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा खेत तैयारी के समय एंव शेष मात्रा बुआई के 21 दिन बाद प्रथम सिचाई के बाद खेत में छिड़ककर सिचाई करनी चाहिये। जीससे चारा जल्दी तैयार होता है।

कटाई– समान्यतः चारे के लिये फसल बुआई के 60–90 दिन बाद कटाई कर सकते है।

उपज– उन्नतशील प्रजातियो से 250–300 कु./हे. तक हरे चारे की उपज प्राप्त हो जाती है।

जैविक खेती : सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम

रोबिन कुमार और देव नारायण यादव

साठ के दशक में शुरू हुई हरित क्रांति के बाद देश खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर हो गया था हरित क्रांति के माध्यम से किसानों को उन्नत तकनीक, बीज और रासायनिक खाद उपलब्ध कराई गई फिर देखते ही देखते हरित क्रांति ने खाद्य उत्पादन के मामले में भारत को अग्रणी देश बना दिया, लेकिन देश को इस हरित क्रांति की बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। हरित क्रांति के नाम पर खेती में कीटनाशकों और खाद के रूप में रसायनों का अधिकाधिक प्रयोग किया गया जिससे जल, भूमि, वायु और वातावरण के साथ साथ फल, सब्जी और अन्य खाद्य पदार्थ भी प्रदूषित हुए। कीटनाशकों के अधिक प्रयोग से भूमि की उर्वरा शक्ति एवं मनुष्य के स्वास्थ्य में गिरावट आती है। इसलिए इस प्रकार की उपरोक्त सभी समस्याओं से निपटने के लिये गत वर्षों से भारत सरकार निरन्तर टिकाऊ खेती के सिद्धान्त पर खेती करने की सिफारिश कर कर रही हैं जिससे देश के सभी प्रदेशो मैं कृषि विभागों ने जैविक खेती को अपनाने के लिए बढ़ावा दिया।

दशक के प्रारंभ में भारत सरकार ने जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए ''राष्ट्रीय जैविक कृषि मिशन'' और ''परम्परागत कृषि विकास योजना'' जैसी योजनाओं की शुरुआत की। इसके अलावा, सिक्किम ने 2016 में खुद को पूरी तरह जैविक राज्य घोषित किया, जो दुनिया का पहला जैविक राज्य बन गया। 2006 में, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) ने जैविक कृषि के लिए विशेष अनुसंधान और विकास कार्यक्रम शुरू किए। सिक्किम राज्य ने 2016 में 100 प्रतिशत जैविक'' राज्य बनने की घोषणा की, जो एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर था तथा अन्य राज्यों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना। 2023 तक, भारत में लगभग 2.78 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर जैविक खेती की जा रही है। भारतीय जैविक खेती में यह बदलाव केवल पर्यावरण संरक्षण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम नहीं है, बल्कि सतत विकास की ओर भी एक महत्वपूर्ण प्रयास है। यह मिट्टी की उर्वरता को बनाए रखती है, जल संसाधनों का संरक्षण करती है, और किसानों की आय में सुधार लाती है। इसके साथ ही, यह ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन के मुद्दों से निपटने में भी सहायक है, और भारतीय कृषि को एक स्थिर और दीर्घकालिक भविष्य की दिशा में अग्रसर कर रही है।

जैव उर्वरक

जैविक खेती, कृषि की वह विधि है जो संश्लेषित उर्वरकों एवं संश्लेषित कीटनाशकों के अप्रयोग या न्यूनतम प्रयोग पर आधारित है, तथा जो भूमि की उर्वरा शक्ति को बचाये रखने के लिये फसल चक्र, हरी खाद, कम्पोस्ट जैव उर्वरक एवं कीटनाशको आदि का प्रयोग पर आधारित हैं। जैव उर्वरक को सामान्य रूप से सूक्ष्म जीवाणुओं का संग्रह के रूप में जाना जाता है, जिसमें कुछ विशेष तरह के सूक्ष्म जीवाणुओं का प्रयोगशाला में प्रजनन किया जाता है, जो मृदा की गुणवत्ता और फसलों की पैदावार को बढ़ाने में मदद करते हैं।

जैव उर्वरको के प्रकार

राइजोबियम

इस सूक्ष्म जीवाणु कल्चर को मुख्यत इसकी जैविक नत्रजन स्थिरीकरण की गुणवत्ता के कारण जाना जाता है। यह सूक्ष्म जीवाणु लेग्यूम कुल के पौधों में उनकी जड़ों (मूल) के साथ सहजीवन व्यतीत करता है। इस कारण इनका उपयोग लेग्यूम कुल तथा उसमें आने वाली दलहनी फसलों जैसे चना, मटर, मूंग, उड़द, मसूर, फलीदार सब्जियां जैसे सेम इत्यादि तथा तिलहनी फसलें जैसे मूंगफली तथा सोयाबीन में ही सीमित है।

एजोटोबैक्टर

इस सूक्ष्म जीवाणु कल्चर के लाभ का क्षेत्र काफी व्यापक है जिसमें तरह तरह की फसलें जैसे अन्न

मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रोद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या–224229 (उ० प्र0) भारत

वाली फसलें, सब्जियां, कपास तथा गन्नाा मुख्य रूप से हैं। यह एक स्वतंत्र रूप से रहने वाला सूक्ष्म जीवाणु है जो बिना किसी सहजीवन के नत्रजन का मुक्त रूप से जैविक स्थिरीकरण करता है।

एजोस्पामइरिलम

यह भी नत्रजन स्थिरीकरण करने वाला एक सूक्ष्म जीवाणु है जो गैर लेग्यूम पौधों के लिए लाभकारी है। यह सूक्ष्म जीवाणु भी जैविक नत्रजन स्थिरीकरण के साथ साथ पादप वृद्धिकारक हारमोंस का स्त्रोव करते हें जो अंकुरण से लेकर पौधे की वृद्धि तक में लाभकारी होते हैं।

फास्फेट घुलनशील सूक्ष्मा जीवाणु (पीएसएम)

यह उन सूक्ष्म जीवाणुओं का समूह है जो कि मृदा में उपस्थित अघुलनशील फास्फेट को घुलनशील फास्फेट में परिवर्तित कर उर्वरक की कार्य क्षमता को बढ़ाता है। क्षारीय मृदों में फास्फेट की उपलब्धतता कम होती है। जब पीएसएम को राक फास्फेट के साथ उपयोग किया जाता है तो सिंगल सुपर फास्फेट की तरह फास्फेटिक उर्वरक की लगभग 50 प्रतिशत तक आवश्यहकता को कम किया जा सकता है।

बीज उपचारित करने की विधि

1. बोने से पूर्व बीज को साफ पानी से घोकर सुखा लें।

2. बीज उपचारित करने से पहले 100 ग्राम गुड आधा लीटर पानी में डालकर पन्द्रह मिनट तक उबालें। यदि गुड न हो तो गोंद या माड का भी प्रयोग किया जा सकता है।

3. घोल को अच्छी तरह ठण्डा होने पर इस घोल में एक पैकेट राइजोबियम जीवाणु कल्चर का घोल डालें, और अच्छी तरह कल्चर को घोल में मिलायें।

4. आधा एकड के लिए प्रयाप्त बीज को कल्चर के घोल में डालकर साफ हाथों से अच्छी तरह मिला दें।

वर्मीकम्पोस्ट

केंचुआ खाद या वर्मीकम्पोस्ट पोषण पदार्थों से भरपूर एक उत्तम जैव ऊर्वरक है। यह केंचुआ आदि कीड़ों के द्वारा वनस्पतियों एवं भोजन के कचरे आदि को विघटित करके बनाई जाती है। वर्मी कम्पोस्ट में न तो बदबू आती है और न ही मक्खी एवं मच्छर बढ़ते हैं, साथ ही वातावरण भी प्रदूषित नहीं होता है। इसमें 2.5 से 3 फीसदी नत्रजन, 1.5 से 2 फीसदी फॉस्फोरस और 1.5 से 2 फीसदी पोटाश पाया जाता है। ''केचुआ द्वारा जैव विघटनशील व्यर्थ पदार्थों के भक्षण तथा उत्सर्जन से उत्कृष्ट कोटि की कम्पोस्ट खाद बनाने को वर्मीकम्पोस्टिंग कहते हैं।''

वर्मी कम्पोस्ट के लाभ

1. वर्मी कम्पोस्ट सामान्य कम्पोस्टिंग विधि से एक तिहाई समय (दो से तीन माह) में ही तैयार हो जाता है।

2. वर्मी कम्पोस्ट में गोबर की खाद (एफ वाईएम) की अपेक्षा नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश तथा अन्य सूक्ष्म तत्व अधिक मात्रा में पाये जाते हैं।

3. वर्मी कम्पोस्ट के सूक्ष्म जीव, एन्जाइम्स, विटामिन तथा वृद्विवर्धक हार्मोन प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

4. केंचुआ द्वारा निर्मित खाद को मिट्टी में मिलाने से मिट्टी की उपजाऊ एवं उर्वरा शक्ति बढ़ती है।

5. मिट्टी की जलधारण क्षमता में सुधार होता है।

6. वर्मी कम्पास्ट के उपयोग से फसलों पर रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों की मांग कम होती है जिससे किसानों का इन पर व्यय कम होता है।

7. वर्मी कम्पोस्ट से प्राकृतिक संतुलन बना रहता है, साथ ही भूमि, पौधों या अन्य जीवों पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता।

वर्मी कम्पोस्ट बनाने की विधि

केचुओं का चयन

वर्मी कम्पोस्टिंग में केंचुओं की उन प्रजातियों का चयन किया जाता है, जिनमें प्रजनन व वृद्धि दर तीव्र हो। प्राकृतिक तापमान के उतार चढ़ाव सहने की क्षमता हो और कार्बनिक पदार्थों को शीघ्रता से कम्पोस्ट में परिवर्तित करने की क्षमता हो।

वर्मीकम्पोस्ट के लिए केंचुए की मुख्य किस्में

1. आइसीनिया फोटिडा

2. यूड्रिलस यूजीनिया

3. पेरियोनेक्स एक्जकेटस

वर्मी कम्पोस्टिंग योग्य पदार्थ

इस प्रक्रिया के लिए समस्त प्रकार के जैव–क्षतिशील कार्बनिक पदार्थ जैसे गाय, भैंस, भेड़, गधा, सुअर और मुर्गियों आदि का मल, बायोगैस स्लरी, शहरी कूड़ा, प्रौद्योगिक खाद्यान्न व्यर्थ पदार्थ, फसल अवशेष, घास–फूस व पत्तियां, रसोई घर का कचरा आदि का उपयोग किया जा सकता है।

कम्पोस्टिंग

कम्पोस्टिंग के लिए गड्ढ़ों या बेड की लम्बाई–चौड़ाई उपलब्ध स्थान के अनुसार निर्धारित करें इनकी गहराई या ऊंचाई 50 सेमी से अधिक न रखें। कम्पोस्टिंग के लिए सबसे नीचे की सतह पांच सेमी मोटे कचरे (घास–फूस, केले के पत्ते, नारियल के पत्ते, फसलों के डंठल आदि) की तह बिछायें। इस तह पर सड़े हुए गोबर की पांच सेमी की तह बनायें तथा पानी छिड़के तथा इसमे 1000–1500 केंचुए प्रति मीटर की दर से छोड़ें। इसके ऊपर सड़ा गोबर और विभिन्न व्यर्थ पदार्थ जिनसे खाद बनाना चाहते हों (10:3 के अनुपात में) आंशिक रूप से सड़ाने के बाद डालें तथा टाट या बोरी से ढक दें। इस पर पानी का प्रतिदिन आवश्यकतानुसार छिड़काव करें ताकि नमी का स्तर 40 प्रतिशत से ज्यादा रहे। कम्पोस्टिंग हेतु छायादार स्थान का चुनाव करें जहां पानी न ठहरता हों।

कम्पोस्ट एकत्रीकरण

साधारणतया 60 से 70 दिन में कम्पोस्ट बन कर तैयार हो जाती है। इस अवस्था में पानी देना बन्द कर दें जिससे केंचुए नीचे चले जायें तब कम्पोस्ट को एकत्र कराएं फिर छान कर केंचुए अलग करें तथा छाया में सुखाकर प्लास्टिक की थैलियों मे भरकर सील कर दें।

जैविक खेती से होने वाले लाभ

1. भूमि की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि हो जाती है।

2. सिंचाई अंतराल में वृद्धि होती है।

3. रासायनिक खाद पर निर्भरता कम होने से लागत में कमी आती है।

4. फसलों की उत्पादकता में वृद्धि।

5. जैविक खाद के उपयोग करने से भूमि की गुणवत्ता में सुधार आता है।

6. भूमि की जल धारण क्षमता बढ़ती हैं।

7. भूमि से पानी का वाष्पीकरण कम होगा।

8. भूमि के जल स्तर में वृद्धि होती है।

9. मिट्टी, खाद्य पदार्थ और जमीन में पानी के माध्यम से होने वाले प्रदूषण मे कमी आती है।

10. कचरे का उपयोग खाद बनाने में, होने से बीमारियों में कमी आती है।

11. फसल उत्पादन की लागत में कमी एवं आय में वृद्धि।

12. अंतरराष्ट्रीय बाजार की स्पर्धा में जैविक उत्पाद की गुणवत्ता का खरा उतरना।

निष्कर्ष

जैविक खेती वर्तमान समय में कृषि की ऐसी पद्धति के रूप में उभर रही है, जो न केवल पर्यावरण को संरक्षित करती है, बल्कि मानव स्वास्थ्य, भूमि की उर्वरता और दीर्घकालिक खाद्य सुरक्षा को भी सुनिश्चित करती है। रासायनिक खेती के दुष्प्रभावों के बीच, जैविक खेती एक स्वस्थ और टिकाऊ विकल्प प्रदान करती है, जो प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और किसानों की आय वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। जैविक खेती अपनाकर हमारे किसान भाई केवल अपने पर्यावरण को संरक्षित ही नहीं कर सकते हैं, बल्कि अगली पीढ़ी को एक सुरक्षित और हरित भविष्य की दिशा में भी मार्गदर्शन कर सकते हैं। इस पद्धति को अपनाना न सिर्फ हमारे लिए आवश्यक है, बल्कि यह एक ऐसी जिम्मेदारी भी है, जिसे निभाना हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिए एक अनमोल उपहार होगा। जैविक खेती की ओर कदम बढ़ाकर हम अपनी मिट्टी, जल और हवा को शुद्ध बना सकते हैं जोकि एक स्वस्थ, स्वच्छ और सतत जीवन शैली की नींव रख सकते हैं।

माताएँ कैसे करें शिशु की देखभाल

रेनू सिंह*, रतन कुमार आनन्द** एवं संजय सिंह***

नवजात शिशु की देखभाल एक बहुत ही संवेदनशील और महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। जन्म से लेकर पहले दो साल तक बच्चे की शारीरिक, मानसिक, और भावनात्मक विकास की नींव रखी जाती है। इस अवधि में बच्चे की देखभाल, पोषण, टीकाकरण, आदतें, शिक्षा, स्वच्छता, सुरक्षा और माता–पिता की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है।

1. पोषणः 'स्तनपान': जन्म के बाद पहले छह महीनों तक शिशु को केवल माँ का दूध पिलाना चाहिए। यह नवजात के लिए सबसे उत्तम पोषण स्रोत है और उसकी रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है।

पानी और हाइड्रेशनः छह महीने के बाद शिशु को उबला हुआ पानी ठण्ढा / सामान्य ताप पर देना शुरू करें। यह उसकी पाचन क्रिया को दुरुस्त रखता है।

पूरक आहारः छह माह से आठ माह के दौरान शिशु को तरल आहार जैसे–फलों का जूस, सब्जियों का सूप, और दाल का पानी थोड़ी मात्रा में शुरू किया जा सकता है। ध्यान रखें कि यह आहार आसानी से पचने वाला हो।

आठ से दस माह के शिशु को अर्धठोस आहार के रूप में पतली दाल मसला आलू, मसला हुआ पका केला, खिचडी, दलिया, फिरनी इत्यादि कई पौष्टिक फूड खिलाये जाने चाहिए।

दस से बारह माह के शिशु को ठोस आहार के रूप में दाल चावल, मिश्रित सब्जी, चपाती दाल में अच्छी तरह भिगो व मसल कर इत्यादि थोड़ी–थोड़ी मात्रा में खिलाना शुरू करना चाहिए।

प्रोटीन विटामिनस् कार्बोहाइड्रेट, खनिज लवण एवं वसा युक्त आहार जैसे–अंकुरित अनाज, दालें हरी पत्तेदार सब्जियाँ और दूध महत्वपूर्ण होते हैं जो उसकी हड्डियों और रक्त के विकास में सहायक होते हैं।

2. टीकाकरणः टीकाकरण का महत्वः शिशु को जन्म के बाद नियमित टीकाकरण कराना अत्यंत आवश्यक है। यह उसे गंभीर बीमारियों से बचाता है। टीकाकरण का समय और प्रकार डॉक्टर द्वारा निर्धारित किया जाता है। इसमें बीसीजी पोलियो, हिपेटाइटिस बी और खसरा जैसी बीमारियों के टीके शामिल होते हैं। सामान्य बच्चों के लिये टीकाकरण अनुसूची तालिका इस प्रकार हैः

टीकाकरण के बाद देखभालः टीकाकरण के बाद शिशु को बुखार या सूजन हो सकती है। इसके लिए डॉक्टर की सलाह लें और हल्के बुखार की दवाएं दी जा सकती है।

3. आदतें और सीखनाः सोने की आदतेंः शिशु को रात में अच्छी नींद दिलाना आवश्यक है। नियमित सोने का समय निर्धारित करें और उसे उसी के अनुसार सुलाएं।

भोजन की आदतेंः शिशु को समय पर भोजन करना सिखाएं और उसे धीरे–धीरे नई चीजें चखने की आदत डालें।

सीखने की प्रक्रियाः शिशु को खिलौनों और रंगों के माध्यम से सीखने की प्रक्रिया से परिचित कराएं। इस समय में वे चीजों को पकड़ना और रंगों को पहचानना शुरू करते हैं।

सामाजिक आदतेंः शिशु को परिवार के अन्य सदस्यों के साथ खेलने और बातचीत करने की आदत डालें, जिससे उसकी सामाजिक कौशल का विकास हो।

शिशुओं को बुजुर्गों एवं सभी के प्रति सम्मान, पालतू पक्षियों एवं पशुओं के प्रति सम्वेदनशील होने का संस्कार रूचिकर, प्रेरणादायी एवं ज्ञानवर्धक कहानियों के माध्यम से विकसित करें।

4. स्वच्छता और देखभालः स्वच्छता का महत्वः शिशु की स्वच्छता का विशेष ध्यान रखें। नियमित रूप से उसके कपड़े बदलें और उसे नहलाएं। गंदगी से बचाने के लिए डायपर को समय पर बदले।

त्वचा की देखभालः शिशु की त्वचा को नर्म और सुरक्षित रखने के लिए बच्चों के लिए विशेष रूप से बने उत्पादों का उपयोग करें। तेल मालिश करना भी फायदेमंद होता है।

मुंह और दांतों की देखभाल शिशु के पहले दांत आने के बाद उसके मसूड़ों और दांतों की सफाई पर ध्यान दें। इसके लिए विशेष बच्चों के ब्रश का उपयोग करें।

5. शिक्षाः

प्रारंभिक शिक्षाः शिशु के लिए प्रारंभिक शिक्षा का मतलब उसे सरल शब्दों और ध्वनियों से परिचित कराना है। गाने और कविताएं सुनाना एक अच्छा तरीका है।

खेल के माध्यम से शिक्षाः शिशु को खेलने के दौरान ही शिक्षा देने की कोशिश करें। रंगीन खिलौने, चित्र और छोटे पुस्तकें उसकी शिक्षा में सहायक हो सकती है।

परिवार के साथ शिक्षाः शिशु को परिवार के साथ समय बिताने दें, जिससे वह भाषा और अन्य सामाजिक कौशलों को सीख सके।

6. सुरक्षाः

*विषय वस्तु विशेषज्ञ, गृह विज्ञान, **वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, के.वी.के, कठौरा, अमेठी, ***वरिष्ठ वैज्ञानिक, उद्यान विभाग (सी.एस.ए., कानपुर)

बिस्तर पर सुरक्षाः शिशु को बिस्तर पर सुरक्षित तरीके से सुलाए, जिससे वह गिरने से बच सके। चारों तरफ गद्दीदार सुरक्षा का इंतजाम करें।

खेल के दौरान सुरक्षाः खेलते समय शिशु की निगरानी रखें और उसे ऐसे खिलौने दें, जो उसकी उम्र के लिए सुरक्षित हो।

बाहर जाने पर सुरक्षाः शिशु को बाहर ले जाने पर उसके लिए आरामदायक और सुरक्षित सीट का उपयोग करें। उसे धूप और ठंड से बचाएं।

8. प्रभावी माँ और अभिभावक बनने के तरीको

धैर्य और प्रेमः शिशु की परवरिश में धैर्य और प्रेम का महत्वपूर्ण स्थान है। उसे हर समय यह महसूस कराएं कि आप उसके लिए मौजूद हैं।

समय देना' शिशु के साथ अधिक से अधिक समय बिताएं, जिससे वह आपके साथ जुड़ाव महसूस करे। यह उसके भावनात्मक विकास के लिए जरूरी है।

समझ और समर्थनः शिशु की जरूरतों और उसकी भावनाओं को समझें। उसका समर्थन करें और उसे नई चीजों की जानकारी देने का प्रयास करें।

नियमितता और अनुशासनः शिशु की दिनचर्या में नियमितता और अनुशासन का पालन करना सिखाएं। यह उसकी आदतों को सुदृढ़ बनाएगा।

निष्कर्ष

नवजात शिशु की देखभाल उसके भविष्य के लिए आधारशिला है। पहले दो सालों में शिशु का शारीरिक, मानसिक, और भावनात्मक विकास सबसे महत्वपूर्ण होता है। इस दौरान माता–पिता का प्यार, देखभाल, और समर्थन शिशु के जीवन को एक सकारात्मक दिशा में ले जाता है। नियमित पोषण, टीकाकरण, स्वच्छता, शिक्षा और सुरक्षा पर ध्यान देना आवश्यक है। धार्मिक और सांस्कृतिक आदतों से उसे परिचित कराना और प्रभावी माँ और अभिभावक बनने की दिशा में प्रयास करना शिशु के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

शिशु टीकाकरण अनुसूची तालिका

उम्र/अवस्था	टीका	खुराक	मात्रा
जन्म के तुरन्त बाद (24 घन्टे के भीतर)	हेपेटाईटिस–बी	जन्म के समय की खुराक	0.5 मिली
जन्म के तुरन्त बाद (15 दिन के भीतर)	पोलियो	'0' खुराक	2 बूंद
जन्म के तुरन्त बाद (1 वर्ष की उम्र तक)	बी.सी.जी.	जन्म के समय की खुराक	0.05 मिली
	यदि एक सप्ताह बाद दिया जा रहा है तो 0.1 मिली दें		
6 सप्ताह पर (डेढ़ माह पर)	पोलियो	पहली खुराक	2 बूंद
	रोटा वायरस	पहली खुराक	5 बूंद
	एफआईपीवी	पहली खुराक	0.1 मिली
	पी.सी.वी.	पहली खुराक	0.5 मिली
	पेन्टावेलेन्ट	पहली खुराक	0.5 मिली
10 सप्ताह पर (पहली खुराक के 4 सप्ताह के अंतराल पर ढाई माह पर)	पोलियो	दूसरी खुराक	2 बूंद
	रोटा वायरस	दूसरी खुराक	5 बूंद
	पेन्टावेलेन्ट	दूसरी खुराक	0.5 मिली
14 सप्ताह पर (दूसरी खुराक के 4 सप्ताह के अंतराल पर साढ़े तीन माह पर	पोलियो	तीसरी खुराक	2 बूंद
	रोटा वायरस	तीसरी खुराक	5 बूंद
	एफआईपीवी	दूसरी खुराक	0.1 मिली
	पी.सी.वी.	दूसरी खुराक	0.5 मिली
	पेन्टावेलेन्ट	तीसरी खुराक	0.5 मिली
9 माह पर	विटामिन–ए	पहली खुराक	1 मिली
	खसरा/एमआर	पहली खुराक	0.5 मिली
	पीसीवी	बूस्टर	0.5 मिली
16 से 24 माह पर	विटामिन–ए	दूसरी खुराक	2.0 मिली
	पोलियो	बूस्टर	2 बूंद
	खसरा/एमआर	दूसरी खुराक	0.5 मिली
	डीपीटी	पहला बूस्टर	0.5 मिली
5 से 6 वर्ष पर	डीपीटी	पहली खुराक	0.5 मिली

बकरी पालन व्यवसाय

एल. सी. वर्मा* एवं राना पीयूष कुमार सिंह**

बकरी पालन व्यवसाय सबसे प्राचीनतम व्यवसायों में से एक है। इसमें थोड़ी सी पूंजी लगाकर व्यवसाय किया जा सकता है। तथा अधिक आय प्राप्त की जा सकती है। इस व्यवसाय को करने में अधिक संसाधनों तथा जमीन की आवश्यकता नही होती है। क्योकि बकरी छोटे शारीरिक आकार, अधिक प्रजनन क्षमता तथा चरने में कुशल पशु होने के कारण इसे पालना सरल है। इसे लाभप्रद व्यवसाय बनाने के लिए जलवायु के अनुरूप अच्छी नस्लें विकसित की गई हैं। इस व्यवसाय को सुचारू रूप से करने के लिए निम्न बातों को ध्यान रखना अनिवार्य है:

1. अच्छी नस्ल का चयन
2. आहार
3. प्रजनन
4. स्वास्थ्य प्रबन्धन
5. रख रखाव व बकरी की बिक्री

अच्छी नस्ल का चयन

इसमें जलवायु तथा आकार के अनुरूप बकरा बकरियों का चयन आवश्यक है।

- बड़े आकार की नस्लें जमुनापारी, बील, झकराना
- मध्यम आकार की नस्लें सिरोही, मारवाडी, मेहसाना

छोटे आकार की नस्लें– बरबरी, ब्लैक बंगाल जमुनापारी, सिरोही तथा बरबरी नस्ल की बकरियों मैदानी क्षेत्रों के लिए अधिक उपयुक्त हैं। अतः पशुपालकों द्वारा इन नस्लों का संवर्धन, वृद्धि एवं व्यवसाय हेतु अधिकाधिक उपयोग किया जा सकता है। व्यवसाय को प्रारम्भ करते समय उच्च प्रजनन क्षमता युक्त वयस्क स्वस्थ बकरियों को ही क्रे करना चाहिए।

आहार प्रबंधन

बकरी चरने वाला पशु है। स्थानीय स्तर पर विकसित चारागाह/पेड पौधा कृषि फसलों की उपलब्धता अच्छे हरे चारे के रूप में आवश्यक हैं। बकरी को यदि 8 घण्टे चराने पर पाला जाता है तो उसके शारीरिक भार का 1 प्रतिशत पौष्टिक आहार के रूप में खाने हेतु दिया जाये। बकरी पालते समय यह ध्यान रखना चाहिए की बकरी का खान पान अच्छे से हो रहा है। उदाहरणार्थ 25 किग्रा. शारीरिक भार पर 250 ग्राम पौष्टिक आहार की आवश्यकता होती है।

बकरियों के आहार के मुख्य स्रोत निम्न हैं

अनाज वाली फसलों से प्राप्त चारे।

दलहनी फसलों से प्राप्त चारे।

पेड पौधों की फलियाँ व पत्तियाँ।

विभिन्न प्रकार की घास व झाडियाँ।

दाने व पशु आहार।

संसाधनों की उपलब्धता के अनुसार आहार व चुगान बकरियों को बांध कर भी उपलब्ध कराया जा सकता है। चारागाह की कमी हो जाने की वजह से आवास में रखकर पालने वाली पद्धति अधिक लाभप्रद होती जा रही है। अच्छे आवास हेतु 12 से 15 वर्ग फीट स्थान प्रति पशु आवश्यक है।

आवास में हवा व प्रकाश की व्यवस्था होनी चाहिए। आवास स्थानीय उपलब्ध संसाधनों में सस्ता निर्मित होना चाहिए।

बांध कर पालने वाली पद्धति में प्रति पशु 12 किग्रा.

*वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं अध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, लेदौरा, आजमगढ़, **प्रक्षेत्र प्रबन्धक, कृषि विज्ञान केन्द्र, कललीपुर, वाराणसी

बकरी पालन व्यवसाय हेतु आय व्यय का विश्लेषण

बकरी पालन इकाई 02 नर तथा 20 मादा पशु

(अ) व्यय विवरण :

विवरण	इकाई	इकाई दर रू.	कुल व्यय रू.	रिमार्क
नर (बकरा)	02	5000	10000	—
मादा (बकरी)	20	3000	60000	—
आहार 500 ग्राम दाना प्रति व्यसक 100—300 ग्राम दाना प्रति बच्चा	वार्षिक	20000	20000	शारीरिक भार के अनुसार 8 घंटे चराई के साथ
आवास	वार्षिक	7500	7500	—
बीमा, परिवहन एवं आँय व्यय	वार्षिक	7500	7500	
योग	—	—	105000	

(ब) आय विवरण :— बकरी दो वर्ष में तीन बार बच्चे देती है, तथा एक बार में औसतन दो बच्चे देती है, इसलिए एक वर्ष में औसत तीन बच्चे प्राप्त होते हैं।

आय विवरण	संख्या	इकाई दर रू.	कुल आय रू.
बकरी विक्रय	60	3000	180000
बकरी की खाद विक्रय	—	20000	20000
योग	—	—	200000

शुद्ध लाभ : कुल आय—कुल व्यय = शुद्ध लाभ

200000—105000 = 95000.00

रूपयेपन्चानवे हजार प्रति वर्ष शुद्ध लाभ प्राप्त होता है।

भूसा या 2.5 किग्रा. हरा चारा / पत्तियाँ / हे / साईलेज तथा 500 ग्राम से 1 किग्रा. संकेन्द्रित आहार शारीरिक आकार के अनुसार दिया जाना चाहिए।

प्रजनन

मादा 10 — 15 माह की आयु में प्रजनन योग्य हो जाती है। गर्मी के लक्षण में बकरी पूँछ को बार — बार हिलाती है तथा योनि से सफेद स्राव आता है। उस समय इसे नर बकरा के सम्पर्क में लाकर संसर्ग कराना चाहिए।

बकरी 150—155 दिन में बच्चा देती है तथा 60—90 दिन में गर्मी में आने पर पुनः गर्भित कराना उचित होता है। नव उत्पन्न शिशु की उचित देखभाल करनी चाहिए, जिससे कि वह स्वस्थ्य रहे। बच्चों को खीस (चीका) व दुग्ध पान दिन में चार बार कराना उचित होता है। दुग्ध का सेवन 6 — 8 सप्ताह तक कराना चाहिए। 39 माह की आयु तक वयस्कता प्राप्त करने हेतु अच्छी आहार व्यवस्था तथा रोग प्रबन्धन करना चाहिए।

स्वास्थ्य प्रबन्धन

बकरी के बच्चों में डायरिया, न्यूमोनिया, इंटेराइटिस से बचाव हेतु उचित देखभाल करनी चाहिए। वयस्कों में परजीवी रोगों के विरुद्ध नियमित कृमिनाशक (पटार) की दवा पिलानी चाहिए। संक्रामक रोग गलघोटू, इंटरोटाक्सीमिया, मुंहपका खुरपका तथा पी. पी. आर. रोगों के विरुद्ध समय—समय पर टीकाकरण कराना आवश्यक होता है।

बेरोजगार युवकों के लिये मुर्गी पालन लाभकारी व्यवसाय

ए. के. सिंह*, आर. सी. वर्मा**, एवं नरेन्द्र प्रताप***

भारत वर्ष में 65 प्रतिवर्ष आबादी ग्रामीण इलाको में रहती है। जिसमे लघु एवं सिमान्त कृषकों की संख्या ज्यादा है। जनसंख्या में हो रही लगातार वृद्धि के कारण सरकारी/प्राइवेट संस्थानों में ग्रामीण युवकों के लिये रोजगार के अवसर लगातार कम होते जा रहे है। वैसे तो पौल्ट्री उद्योग दक्षिण राज्यों में केन्द्रित रहा है लेकिन अब यह उत्तरी राज्यों में भी कल फूल रहा है। ऐसा होने के कई कारण है, जिसमें सबसे प्रमुख मुर्गी पालकों को ज्यादा लाभ, स्थायी आमदनी तथा उत्पाद़न पर मजबूत पकड़ इस उद्योग के बढ़ने में चूजों, आहार, दवाइया एवं अन्य सेवाओं के आसानी से उपलब्ध होने के साथ ही ब्रायलर के निर्धारित दामों में बिकने की प्रमुख भूमिका रही है। यही कारण है कि बड़ी संख्या ने ग्रामीण युवकों का रूझान मुर्गी पालन की की ओर हुआ है। मुर्गी पालन उद्योग 11.12 प्रतिशत की दर से प्रतिवर्ष वृद्धि कर रहा है। अण्डा एवं मांस की खपत प्रतिवर्ष लगातार बढ़ रहा है। इसलिये यह उद्योग कम पूजी में ग्रामीण युवकों के लिये अत्यन्त लाभकारी है। इसलिये इस क्षेत्र में बेरोजगार युवकों, लघु एवं सिमान्त कृषकों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति को सुदृढ़ करने के काफी अवसर है। इससे न केवल रोजगार के अवसर बढ़ेगे बल्कि प्रदेश की आर्थिक स्थिति भी सुदृढ़ होगी।

अण्डा उत्पादन हेतु नस्ल :—व्हाइट लेगहॉर्न :— विश्व की सर्वोत्तम व सबसे लोकप्रिय अण्डा उत्पादक नस्ल है। मुर्गे तथा मुर्गी का औसत भार क्रमशः 2.0 व 1.5 किग्रा0 होता है, यह लगभग 200 या इससे अधिक अण्डे प्रति वर्ष देती है।

अस्ट्रा ब्याइट (आस्टालोर्प नर ब्वाइट लेगर्हान): यह भी 200 से ज्यादा अण्डे प्रतिवर्ष देती हैं।

मिनोर्का : यह भी अच्छा अण्डा उत्पादक होती है। यह आकार में कुछ बड़ी होती है।

अनकोना : यह आकार में छोटी एवं अच्छी अण्डा उत्पादक होती है।

अण्डा उत्पादन के लिए भारतीय संकर नस्लें :—

कैरी प्रिया : यह मुर्गी पहला अण्डा 17 से 18 वें हफ्ते के बीच में देती है। इसका औसत अण्डा उत्पादन प्रतिवर्ष 280—290 के बीच है। सबसे अधिक उत्पादन 27—28 वें हफ्ते में होता है।

कैरी सोनाली : भारतीय बाजार में इसकी बड़ी मांग है। यह भी लगभग 280 अण्डा प्रतिवर्ष देती है। इसका अण्डा भूरा रंग का होता है।

अण्डा एवं मांस के लिए :—रोड आइलैण्ड रेड— इस नस्ल के मुर्गे एवं मुर्गी का औसत भार क्रमशः 3.0 व 2.0 किग्रा0 होता है। इसक औसत अण्डा उत्पादन लगभग 190 अण्डे प्रतिवर्ष है।

आस्टालोर्प : एकल कलगी की नस्ल, नर व मादा का औसत भार क्रमशः 3.0 से 2.0 किग्रा0 होता है। इसका औसत अण्डा उत्पादन लगभग 190 अण्डे प्रतिवर्ष है।

न्यू हैम्पशायर : यह सिंगल कोम्ब होता है। ये पक्षी बड़े, भूरे रंग के अण्डे देते है। इनका औसत वजन 2.5 से 4.0 किग्रा0 तक होता है।

केन्द्रीय पक्षी अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों ने भी कुछ नस्लों को यहां के परिस्थिति के अनुसार विकसित किया है।

मांस (ब्रायलर) उत्पादन हेतु नस्ल :—कैरी रेनब्रो : छठे व सातवें हफ्ते में इसका वनज लगभग 1.3 से 1.6 किग्रा0 तक हो जाता है। इस अवस्था तक लगभग 72 प्रतिशत मांस उत्पादन हो जाता है।

कैरीब्रो विशाल : छठे हफ्ते में इसका वजन लगभग 1.65 से 1.70 किग्रा0 तक हो जाता है एवं सातवें हफ्ते में 2.1 से 2.2 किग्रा0 तक हो जाता है।

कैरीब्रो मृत्युन्जय : 6 हफ्ते में लगभग 1.65 से 1.70 किग्रा0 तक हो जाता है।

ये नस्लें भारतीय जलवायु के लिए विकसित की गई हैं, इनमें बीमारियों से लड़ने की क्षमता अधिक होने से मृत्यु दर बहुत ही कम होती है। विभिन्न

*वैज्ञानिक, **वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं ***प्रमुख कृषि विज्ञान केन्द्र, आँकुशपुर, गाजीपुर

वातावरणों एवं गांव में पलने हेतु सक्षम, कम आहार खर्च के बदले अधिक एवं उत्तम परिणाम, इन्हीं विशिष्ट गुणों के कारण आजकल यह अधिक लोकप्रिय हो रही है एवं इनका रंग भी रंगीन देशी मुर्गों की तरह होता है।

मुर्गी पालन व्यवसाय शुरू करने से पहले निम्न बिन्दुओं पर ध्यान देना अति आवश्यक है :—

1. जहां फार्म शुरू करें वहां पानी, बिजली, आवश्यक जमीन एवं यातायात के साधन उपलब्ध होना चाहिए।

2. जहां यातायात के साधन उपलब्ध न हो वहां मुर्गी पालकों को मांस के लिए मुर्गियां पालना चाहिए क्योंकि अण्डे टूटने के कारण काफी नुकसान उठाना पड़ता है।

3. प्रारम्भ में मुर्गीपालन थोड़ी मुर्गियों से शुरू करके एक सहयोगी धन्धे के रूप में अपनाना चाहिए जैसे—जैसे व्यवसायिक क्षमता और अनुभव में वृद्धि होगी वैसे—वैसे धन्धे को बढ़ाया जा सकता है।

4. लघु एवं सीमान्त किसान व बेरोजगार कोशिश करें कि अपनी ही पूंजी से यह व्यवसाय शरू हो अन्यथा सरकार भी भारी अनुदान, तकनीकी प्रशिक्षण बैंक आदि संस्थाओं से आसान किस्तों पर ऋण उपलब्ध कराती हैं।

5. अनुभव के लिए शुरू में 100 मुर्गियों से व्यवसाय शुरू करें, इन्हें सयन प्रणाली, विधि से पालना चाहिए। उन्नत नस्ल के मांस एवं अण्डे के लिए मुर्गियों के चूजों को निजी है चरियों एवं सरकारी कुक्कुट फार्मों से प्राप्त किया जा सकते हैं।

6. मुर्गियों को पालने के लिए गहरी बिछाली (डीप लिटर शेड) पद्धति को अपनाना चाहिए।

7. समुचित संतुलित आहार की व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए क्योंकि इस व्यवसाय में होने वाले पूरे खर्च का 65—70 प्रतिशत तक आहार दाने पर होता है।

मुर्गियों का आहार— मुर्गियों की विभिन्न श्रेणी व आयु की अवस्थाओं में उनकी शारीरिक क्रियाओं, विकास, उत्पादन, प्रजन एवं स्वास्थ्य निर्वाह की दैनिक आवश्यकताओं के लिए विभिन्न प्रकार के पोषक तत्वों से युक्त संतुलित दाने की आवश्यकताएं होती हैं। यहां अण्डा एवं मांस वाली मुर्गियों के लिए दाने एवं पानी को आवश्यकता निम्न सारणी के माध्यम से दी जा रही है —

पक्षियो की उम्र (दिन में)	लेयर			ब्रायलर		
	औसत शरीर भार (ग्राम में)	आहार (ग्राम में)	पानी (मी.ली. में)	औसत शरीर भार (ग्राम में)	आहार (ग्राम में)	पानी (मी.ली. में)
7	50	6.5	40	182	6.5	62
15	100	13	80	322	14	140
30	260	24	105	900	26	170
45	380	37	132	1650	42	210
60	565	49	160	2150	54	230
90	980	60	205	—	—	—
120	1050	65	240	—	—	—
150	1280	80	280	—	—	—

सितम्बर माह में किसान भाई क्या करें

फसलों में
डॉ. आर.आर. सिंह
प्राध्यापक (मृदा विज्ञान)

(1) धान में जल भराव की दशा में नीम कोटेड यूरिया का ही प्रयोग करें तथा यूरिया की टॉप ड्रेसिंग के पूर्व खेत से पानी निकाल लें! यदि संभव नहीं हो तो 2.0 प्रतिशत यूरिया घोल का पर्णीय छिड़काव करें।

(2) खैरा रोग की दशा में 5 किग्रा जिंक सल्फेट चूने के पानी के साथ अथवा 2 प्रतिशत यूरिया घोल के साथ पर्णीय छिड़काव करें।

(3) जल भराव वाले क्षेत्रों में सल्फर की कमी के कारण नयी पत्तियां पीली निकलती हैं। सल्फर की कमी पूर्ण करने हेतु 20–30 किग्रा प्रति हे0 की दर से वेंटोनाइट सल्फर या 2 कु0 प्रति हे0 जिप्सम का छिडकाव करें।

(4) तोरिया की बुवाई 15 सितम्बर के बाद मानसून जाने के तुरन्त बाद करें। 4 किग्रा बीज प्रति हे0 की दर से बुवाई करें तथा 20 किग्रा सल्फर का प्रयोग तिलहन में अवश्य करें अथवा फास्फोरस की मात्रा सिंगल सुपर फास्फेट से दें जिससे सल्फर की पूर्ति हो सके।

सब्जी एवं उद्यान में
अश्वनी कुमार सिंह
विषय वस्तु विशेषज्ञ (उद्यान)

(1) जाड़े एवं बसन्त वाली टमाटर तथा बैंगन की पौध इस माह के प्रथम एवं दूसरे पखवारे में डालें।

(2) मुख्य समय में तैयार होने वाली गोभी की पौध माह के प्रथम सप्ताह में डालें तथा पिछैती एवं मध्यम किस्मों की पौध माह के दूसरे पखवारे में डालें।

(3) अगेती पात गोभी की पौध इस माह के दूसरे पखवारे में डालें।

(4) परवल के तने की रोपाई 1.5 x 1 मीटर के फासले पर 2700 कटिंग प्रति एकड़ के हिसाब से इस माह में भी कर सकते हैं। प्रत्येक कटिंग 90 सेमी की होनी चाहिये।

(5) नये बाग लगाने का यह सर्वोत्तम माह है। पहले से तैयार गड्ढो में पौधों की रोपाई करें। यदि पहले से गड्ढे नहीं तैयार किये गये हैं तो आम, आँवला, बेर के लिये 75 सेमी व्यास तथा इतने ही गहराई के गड्ढे खोदकर खाद एवं मिट्टी की समान मात्रा भरकर पौधे रोपित कर सकते हैं।

(6) पुराने बागों की एक अच्छी जुताई कर दें, जिससे गिरी हुई पत्तियाँ एवं अन्य कूड़ा करकट सड़ सकें और खर–पतवार नष्ट हो सके।

(7) आम, अमरूद, बेर, आँवला, कटहल आदि का प्रबन्ध कलम चश्मा विधि द्वारा इस माह के प्रथम सप्ताह तक पूरा कर लें।

फसल सुरक्षा
डॉ. वी. पी. चौधरी एवं डॉ. पंकज कुमार
सहायक प्राध्यापक (पादप रोग)

(1) धान में खैरा रोग के नियंत्रण के लिए 5 किग्रा जिंक सल्फेट तथा 20 किग्रा यूरिया अथवा 2.5 किग्रा बुझे हुए चूने को 800–1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

(2) धान की फसल में कीटों के नियंत्रण के लिए फास्फेमेडान 250–300 मिली प्रति हेक्टेयर 800 से 1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

(3) मक्का में तुलसिता रोग के नियंत्रण के लिए जिंक कार्बोमेट रसायन 2 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से 800–1000 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

(4) तिलहनी फसलों में पर्ण चित्ती तथा जीवाणु झुलसा रोग नियंत्रण के लिये जिंक कार्वामेट रसायन 2 किग्रा तथा स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 15 ग्राम अथवा एग्रीमाइसीन 100 (75 ग्राम) को 800–1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

(5) धान में तना छेदक के नियंत्रण के लिये कार्बोफ्यूरॉन 3 जी 3–5 सेमी खड़े पानी में 20 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में बिखेर दें अथवा फास्फेमिडान 85 ईसी 500 मिली को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

(6) हरा, सफेद एवं भूरा फुदका के नियंत्रण के लिये फास्फेमिडान 85 ईसी 500 मिली को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

(7) धान में जीवाणु झुलसा बीमारी लगने पर खेत का पानी निकाल कर 15 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लीन व कॉपर आक्सीक्लोराइड 500 ग्राम को 1000 लीटर पानी में घोल कर प्रति हेक्टेयर की दर से 2–3 छिड़काव 10–15 दिन के अन्तराल पर करें।

(8) धान में झोंका रोग नियंत्रण हेतु कार्बेन्डाजिम 1 किग्रा या एडिफेनफास 1 लीटर को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

संकलनकर्ता : डॉ. अनिल कुमार विषय वस्तु विशेषज्ञ, प्रसार निदेशालय, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या, उ.प्र.

(9) बैंगन की फसल को तना व फलीबेधक कीट हानि पहुँचाता है। रोगग्रस्त भाग को काट देना चाहिये तथा प्रभावित कटे भाग को जला देना चाहिये। फेनवालरेट 20 ईसी 750 मिली या डिलमेथरिन 28 ईसी 450 मिली या साइपरमेथरीन 10 ईसी 750 मिली को 800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें।

पशुपालन

डॉ. सुरेन्द्र सिंह

विषय वस्तु विशेषज्ञ (पशु विज्ञान)

(1) भैंसों में ब्यांत का समय चल रहा है अतः नवजात पड़वा/पड़िया को भैंस का प्रथम दूध खींस तीन दिन तक अवश्य पिलाएं। इसमें बच्चों में विभिन्न प्रकार की बीमारियों से बचाव की सम्भावना बढ़ जाती है।

(2) पशुओं को जहरी बुखार, लंगड़िया तथा गलाघोंटू बीमारी का टीका यदि अभी तक न लगा हो तो इस माह में अवश्य लगवा दें।

(3) मुर्गियों से अधिक अण्डा व मांस उत्पादन के लिए उन्हें बहुत दिनों का पुराना दाना नहीं देना चाहिए, क्योंकि बरसात के मौसम में दानें में फफूँदी लगने की सम्भावना अधिक रहती है।

(4) गर्भवती भैंस को पौष्टिक दलहनी चारा के अतिरिक्त खनिज लवण एवं विटामिन युक्त आहार दें।

(5) ब्रायलर मुर्गियों के प्रबन्धन पर विशेष ध्यान रखें। बरसात में बिछावन गीला होने की सम्भावना अधिक होती है। अतः समय–समय पर गुड़ाई करके बिछावन गीला होने से बचायें।

प्रश्न किसानों के, जवाब वैज्ञानिकों के

प्रश्न : मोथा घास का निदान कैसे करें?

(श्री गजेन्द्र यादव, ग्राम गयासपुर, जनपद अयोध्या)

उत्तर : मोथा घास के नियंत्रण के लिये खेत की ग्रीष्मकालीन 2–3 बार जुताई करें। खरीफ में धान उगाने के लिये लेवा करके अंकुरित बीज बोयें अथवा पौध रोपें। धान, मक्का, गन्ना, ज्वार तथा बाजरा की शुद्ध फसल में संस्तुति के अनुसार 2,4– डी शाकनाशी का प्रयोग करें। वर्षा और ग्रीष्मकाल में सघन उगने वाली और जल्दी बढ़ने वाली फसलें लगाना अच्छा होगा। प्रत्येक फसल में बुवाई के बाद 15–20 दिन की अवस्था पर पहली निराई तथा इतने ही अन्तराल पर दूसरी निराई अवश्य करें। बाद की निराई आवश्यकतानुसार करें। निराई–गुड़ाई के समय इस घास को समूल निकालकर नष्ट कर दें। बिरल या अधिक फासले पर लगाई जाने वाली फसलों में गन्ने की पत्ती, पुआल अथवा जलकुम्भी बिछाने से बहुत अच्छे परिणाम मिले हैं। गेहूँ, धान आदि फसल की एक माह की अवस्था पर वासाग्रान 2 लीटर प्रति हेक्टेयर 500–600 लीटर पानी में घोलकर छिड़कने से मोथा के साथ–साथ अन्य दूसरी घासें भी नष्ट हो जाती हैं।

प्रश्न : बैंगन की पौध को कीड़े पत्तियाँ एवं डण्ठल काट रहें हैं, इसकी रोकथाम कैसे करें?

(श्री जितेन्द्र सिंह, ग्राम बहादुरगंज, जनपद अयोध्या)

उत्तर : बैंगन में तना छेदक एवं फल छेदक कीड़े लगे हैं। इस कीड़े के आक्रमण करने के पहले ही उपाय करना चाहिये, क्योंकि यह कीड़ा जब अन्दर घुस जाता है तो दवा असर नहीं करती है। अतः कीड़े लगने से पहले ही छिड़काव करना चाहिये। इसके नियंत्रण के लिये 2 मिली मैलाथियान को एक लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिये अथवा फास्फेमिडान 100 ईसी 250 मिली प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें।

प्रश्न : मुर्गीपालन प्रारम्भ करना चाहते हैं, कैसे करें?

(श्री रज्जन, गोपालपुर, जनपद अमेठी)

उत्तर : मुर्गीपालन दो प्रकार से किया जाता है एक अण्डा उत्पादन के लिये, दूसरा मांस (ब्रायलर) उत्पादन। अण्डा उत्पादन हेतु सबसे अच्छी नस्ल ह्वाइट लेगहार्न पायी जाती है जो वर्ष भर में लगभग 280–300 अण्डे का उत्पादन करती है। इसके लिये बिछावन पद्धति और केज पद्धति से मुर्गियों को पाला जाता है। दूसरा ब्रायलर पालन जिसे पूर्वांचल में बहुत से किसानों द्वारा किया जा रहा है। यह बहुत कम समय में अर्थात 25–30 दिन में 1200–1500 ग्राम वजन तक हो जाता है जिसे बाजार के आवश्यकता अनुसार छोटा अथवा बड़ा करके बेच दिया जाता है। ब्रायलर पालन के लिये जहाँ मुर्गी घर बनाना है वह जगह ऊँचा होना चाहिये, पानी न रूकता हो, बाजार के नजदीक तथा आने जाने के लिय सड़क होना आवश्यक है। एक ब्रायलर के लिए एक वर्गफुट स्थान की जरूरत पड़ती है जिसे अच्छे प्रबन्धन एवं संतुलित आहार खिलाकर कम समय में अधित लाभ प्राप्त किया जा सकता है। अधिक जानकारी के लिये आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज के कृषि तकनीकी सूचना केन्द्र पर आकर सम्पर्क कर सकते हैं।

पंजीयन संख्या - 54461/91 डाक पंजीयन संख्या एल. डब्लू./एन.पी. 34

प्रति रूपये 25/–मात्र

प्रसार निदेशालय

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय

कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

द्वारा

कृषि तकनीकी सूचना केन्द्र

के अन्तर्गत प्रकाशित ग्रामोपयोगी पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य रु.
आधुनिक मधुमक्खी पालन एवं प्रबन्ध	35.00
जिमीकन्द की खेती	25.00
मशरूम उत्पादन एवं उपयोगिता	25.00
किसानोपयोगी फसल सुरक्षा तकनीक	75.00
फसल उत्पादन तकनीक	50.00
जीरो टिल सीड कम फर्टी ड्रिल	25.00
फल–सब्जी परीरक्षण एवं मानव आहार	75.00
गन्ने की आधुनिक खेती	25.00
जीरो टिलेज गेहूँ बुवाई की एक विश्वसनीय तकनीक	35.00
केचुआ पालन (वर्मीकल्चर) एवं वर्मी कम्पोस्ट उत्पादन	25.00
व्यावसायिक कुक्कुट (ब्रायलर) उत्पादन	35.00
फसलों के सूत्रकृमि रोग एवं उनका वैज्ञानिक प्रबन्धन	40.00
आय संवर्धन हेतु प्रमुख सब्ज़ियों की उत्पादन तकनीक	35.00
गृहणियों के लिए बेकिंग कला	40.00
स्वच्छ दूध उत्पादन तकनीक एवं उसका महत्व	35.00
गायों एवं भैसों के मुख्य रोग, टीकाकरण एवं संतुलित पशु आहार	35.00
मछली पालन	40.00
फसल अवशेष प्रबंधन	30.00

मुद्रित

सेवा में,
श्री/श्रीमती

प्रेषक:
प्रसार निदेशालय
आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कुमारगंज, अयोध्या – 224 229

आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या की ओर से डॉ. आर.आर. सिंह अपर निदेशक प्रसार द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित